औषधीय एवं सगंधीय पौधों की खेती

(प्रमाण–पत्र पाठ्यक्रम)

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

17, महर्षि दयानन्द मार्ग, (थार्नहिल रोड)

इलाहाबाद–211 001

खण्ड–2 का परिचय

प्रमुख औषधीय पौधे (स्टीविया, लेमनग्रास, जैट्रोफा, ग्वारपाठा एवं कालमेघ) की विभिन्न प्रजातियाँ, खेती करने का तरीका, व्यवसायिक महत्व, आय–व्यय की आर्थिकी

खण्ड–2 में प्रमुख औषधीय पौधों के संदर्भ में पूर्ण वैज्ञानिक जानकारियाँ उपलब्ध करायी गयी हैं। इस खण्ड को 4 इकाई में बांटा गया है। पहली इकाई में शक्कर से कई गुना ज्यादा मीठा पौधा स्टीविया, इकाई–2 में औषधीय एवं संगन्ध पौधों की खेती लेमनग्रास अथवा नींबू घास, इकाई–3 में डीजल का विकल्प प्रदान करने में सक्षम एक उपयोगी वृक्ष– जैट्रोफा अथवा रत्नजोत तथा इकाई–4 में कन्याओं का सौन्दर्य बढ़ाने वाला पौधा ग्वारपाठा के संदर्भ में सम्पूर्ण जानकारी जैसे– औषधीय उपयोगिता, खेती की विधि, जलवायु, मिट्टी की उपयुक्तता, पानी की आवश्यकता, प्रमुख प्रजातियाँ, पौध सामग्री का चयन, खेती करने हेतु सावधानियाँ, भूमि की तैयारी, पौध रोपड़ की विधि, सिंचाई की व्यवस्था, खरपतवार नियन्त्रण, खाद एवं अन्य पोषक तत्वों की आवश्यकता, फसल से फूलों का झड़ना, फसल पर होने वाले प्रमुख रोग तथा नियंत्रण, फसल की कटाई, कुल उपज तथा प्राप्तियाँ, विपणन व्यवस्था, खेती के लिए पौध सामग्री की व्यवस्था, आय–व्यय की आर्थिकी इत्यादि के सन्दर्भ में विस्तार से सरल भाषा में वर्णन किया गया है। जिससे कृषकगणों को औषधीय पौधों के संदर्भ में सम्यक वैज्ञानिक जानकारियों से अवगत कराया जा सके। कम लागत में अधिक उत्पादन तथा नगदी फसल के रूप में कृषकगण लाभान्वित हो सकें तथा सुखमय एवं स्वस्थ जीवन–यापन का मार्ग भी प्रशस्त हो सके।

खण्ड– 2

इकाई– 1

1.1.	**शक्कर से कई गुना ज्यादा मीठा पौधा : स्टीविया**
1.1.1	भूमिका
1.1.2	उद्देश्य
1.1.3	स्टीविया की औषधीय उपयोगिता
1.1.4	स्टीविया की खेती की विधि
1.1.5	जलवायु
1.1.6	मिट्टी की उपयुक्तता
1.1.7	पानी की आवश्यकता
1.1.8	स्टीविया की प्रमुख प्रजातियाँ
1.1.9	उपयुक्त पौध सामग्री का चयन
1.1.10	खेती हेतु स्टीविया के पौध लेने से पूर्व रखी जाने वाली सावधानियाँ
1.1.11	भूमि की तैयारी तथा पौध रोपड़ की विधि
1.1.12	सिंचाई की व्यवस्था
1.1.13	खरपतवार नियन्त्रण तथा निराई–गुड़ाई
1.1.14	खाद एवं अन्य पोषक तत्वों की आवश्यकता
1.1.15	फसल से फूलों का हटना
1.1.16	फसल पर होने वाले प्रमुख रोग तथा उनका नियंत्रण
1.1.17	फसल की कटाई
1.1.18	कुल उपज तथा प्राप्तियाँ
1.1.19	स्टीविया की विपणन व्यवस्था
1.1.20	स्टीविया की खेती के लिए पौध सामग्री की व्यवस्था
1.1.21	स्टीविया की आर्थिकी

खण्ड : 2

इकाई : 1

1.1 शक्कर से कई गुना ज्यादा मीठा पौधा

स्टीविया (*Stevia rebaudiana*)

1.1.1 भूमिका

वर्तमान समय में जिस प्रकार की निष्क्रिय जीवन शैली आम नागरिक जी रहे हैं, उससे मोटापे तथा मधुमेह की समस्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। एक अनुमान के अनुसार भारतवर्ष में 25 से 45 वर्ष की आयु समूह के 15 प्रतिशत व्यक्ति इस रोग से पीड़ित है तथा इस संख्या में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि होती जा रही है। यह समस्या केवल भारतवर्ष तक ही सीमित नहीं हैं वरन् सम्पूर्ण विश्व में एक महामारी का रूप लेती जा रही है। इस सन्दर्भ में विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2005 में मधुमेह रोगियों की संख्या 5.7 करोड़ तक पहुंच गई है। इस वस्तुस्थिति के फलस्वरूप विभिन्न न्यून कैलोरी स्वीटनर्स जैसे शुगर फ्री, ईकुअल, टोटल आदि हमारे भोजन का आवश्यक अंग बन चुके हैं। दुर्भाग्यवश इन उत्पादों के पूर्णतया सुरक्षित न होने के कारण डॉक्टर तथा वैज्ञानिक किसी ऐसे उत्पाद की खोज में थे जो न्यून कैलोरी तथा शुगर फ्री होने के साथ–साथ प्राकृतिक स्रोत से भी प्राप्त किया गया हो। डॉक्टरों तथा वैज्ञानिकों की इसी खोज का परिणाम है : **स्टीविया रीबाउदिआना।**

स्टीविया का पूर्ण विकसित पौधा

स्टीविया रीबाउदिआना मूलतः मध्य पेरूग्वे का पौधा है जहां यह

तालाबों अथवा नालों के किनारों पर प्राकृतिक रूप से उगता है। चीनी, तुलसी, मधुपत्र अथवा मीठे पौधे के रूप मे जाना जाने वाला यह पौधा अपनी सामान्य अवस्था में आम शक्कर से लगभग 25 से 30 गुना ज्यादा मीठा होता है जबकि इससे निकाला जाने वाला एक्सट्रैक्ट शक्कर से लगभग 300 गुना ज्यादा मीठा होता है। स्टीविया का कृषिकरण सर्वप्रथम जापान में प्रारभं हुआ जहाँ जापानियों ने इसे पचास के दशक में व्यवसायिक कृषि की दृष्टि से अपनाया तथा उन्होनें इसकी कई उन्नतशील प्रजातियॉ विकसित की। वर्तमान में इसकी व्यवसायिक खेती मुख्यतया जापान, पेरूग्वे, कोरिया, ताईवान, अमेरिका तथा दक्षिणी एशियाई देशों में की जा रही है। भारतवर्ष के विभिन्न राज्यों जैसे कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, तथा मध्यप्रदेश के विभिन्न भागों में भी इसकी खेती प्रारम्भ हो चुकी है। बायोवेद शोध संस्थान ने उ.प्र. में भी स्टीविया की खेती प्रारम्भ करायी है।

मधुमेह से पीड़ित रोगियों के लिए स्टीविया से प्राप्त चीनी, प्रचलित चीनी का एक प्रभावी विकल्प है। स्टीविया से प्राप्त होने वाले मुख्य यौगिक स्टीवियोसाइड और रेबाउदीसाइड–ए हैं जिनमें इंसुलिन को नियंत्रित करने की अद्भुत क्षमता है। इसमें पाया जाने वाला मीठा, घरेलू चीनी से 250 गुना और सुक्रोज से 300 गुना अधिक मीठा होता है।

स्टीविया का पौधा लगभग 60 से 70 से.मी. ऊँचा एक बहुवर्षीय तथा झाड़ीनुमा होता है। प्राकृतिक अवस्था में यह पौधा 11 से 41 अंश तक के तापक्रम में सफलतापूर्वक पनपता देखा जा सकता है जबकि इसकी कुछ प्रजातियॉ विशेषतया इसकी नवीन तथा उन्नत प्रजातियॉ 45 अंश तक के तापक्रम में भी अच्छी प्रकार पनप जाती है।

स्टीविया के पत्ते का स्वाद मीठा होता है। इसके पत्तों में पाए जाने वाले प्रमुख घटक हैं स्टीवियोसाइड, रीबाउदिस, रीबाउदिसाइड–सी, ग्लूकोसाइड, तथा छः अन्य यौगिक। इस यौगिको में इन्सुलिन को संतुलित करने के गुण पाये जाते हैं। जिसके कारण इसे मधुमेह रोगियों के लिए

उपयोगी माना जाता है। वैसे इसका सर्वाधिक उपयोग घटक स्टीवियोसाइड हैं जिनकी मात्रा इसके सूखे पत्तों में 3 से 20 प्रतिशत तक हो सकती है। प्रायः 9 प्रतिशत तथा इससे अधिक स्टीवियोसाइड वाले स्टीविया के पत्तों को अच्छी गुणवत्ता का माना जाता है।

1.1.2 उद्देश्य : स्टीविया की खेती के संदर्भ में सम्पूर्ण वैज्ञानिक जानकारियां उपलब्ध कराना है।

1.1.3 स्टीविया की औषधीय उपयोगिता

हाल ही के वर्षों में व्यवसायिक एवं औषधीय जगत में अत्यधिक महत्व अर्जित करने वाले पौधे स्टीविया की उपयोगिता इसमें पाए जाने वाले मिठास के गुण के कारण हैं। सामान्य शक्कर से 25 से 30 गुना अधिक मीठा होने के साथ साथ स्टीविया की विशेषता यह भी है कि यह पूर्णतया कैलोरी रहित है जिसकी वजह से मधुमेह के रोगियों के लिए शक्कर के रूप मे इसका उपयोग पूर्णतया सुरक्षित है। इसके साथ–साथ ऐसे व्यक्ति जो ''कैलोरी कांशियस'' हैं तथा जो अपना वजन बढ़ने के प्रति काफी सचेत रहते हैं, उनके लिए भी इसका उपयोग सुरक्षित है। क्योकि वर्तमान में प्रयुक्त हो रहे विभिन्न उत्पाद मानव मात्र के लिए पूर्णतया सुरक्षित नहीं हैं अतः ऐसे में स्टीविया जोकि एक पूर्णतया हर्बल उत्पाद है तथा सभी प्रकार के दूरगामी प्रभाव से मुक्त है, शक्कर का एक उपयुक्त प्रभावी विकल्प बनता जा रहा है। वर्तमान में विभिन्न पूर्वी देशों जैसे जापान तथा कोरिया आदि में स्वीटनर्स के 40 प्रतिशत मार्केट पर स्टीविया सार का अधिपत्य हो चुका है जिसमें निरन्तर बढ़ोत्तरी हो रही है। भारत जैसे देश में जहॉ मीठे तथा मिठाई का अत्यधिक प्रचलन है तथा मिष्ठान प्रेमी भारतीयों द्वारा जहॉ मीठे के बिना जीवन अधूरा सा मानते है, स्टीविया के लिए काफी व्यापक बाजार हो सकता है। चाय तथा कॉफी आदि में प्रयुक्त करने के साथ–साथ इसका उपयोग विभिन्न

स्टीविया की पूर्ण विकसित फसल कटाई हेतु तैयार

मिठाइयों तथा चाकलेट्स आदि में भी किया जा सकता है जिससे मीठे के शौकीन, ऐसे भारतवासियों जो मधुमेह से पीड़ित हैं अथवा वजन के प्रति सचेत हैं, के लिए यह किसी देवकृपा से कम नहीं है। मीठे के रूप में तथा मिष्ठानों में प्रयुक्त किये जाने के साथ–साथ यह उच्च रक्तचाप तथा रक्त शर्करा का भी नियमितीकरण करता है, जिससे चर्म विकारों से भी मुक्ति मिलती है, यह एन्टी–वायरल तथा एंटी–बैक्टीरियल भी है तथा दांतों एवं मसूड़ो की बीमारियों से भी मुक्ति दिलाती है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि स्टीविया का काफी अधिक औषधीय एवं अंर्तराष्ट्रीय बाजार हो सकता है। विशेष रूप से जिस गति से मधुमेह की समस्या बढ़ती जा रही है उसे देखते हुए सहज ही सोचा जा सकता है कि इसका बाजार निरन्तर बढ़ते ही जाना है। उल्लेखनीय है कि अमेरिकी खाद्य एवं औषधि प्रशासन द्वारा उनके आदेश क्र. ए 45–06 के अनुसार स्टीविया एक आहार आपूर्तिकारक के रूप में मान्य किया गया है।

स्टीविया की उपयोगिता

स्टीविया की उपयोगिता इसमे पाये जाने वाले मिठास तथा औषधीय गुण के कारण हैं। इन्हीं गुणों के कारण इसकी आर्थिकी भी उच्चतम है, इसकी पत्तियों में सामान्य चीनी से 30 गुना अधिक मिठास होती है। इसके अतिरिक्त यह कैलोरी रहित होता है। इन्हीं दो गुणों के कारण यह मधुमेह रोगियों के लिये रामबाण औषधि है। भारतीय परिवेश एवं जीवनशैली तथा खान–पान मिष्ठान के अभाव में अधूरा ही माना जाता है। यही कारण है कि इस देश में मधुमेह हाइपरटेन्सन एवं मोटापे के शिकार लोगों की संख्या

रोपाई के लिए तैयार स्टीविया के पौधे

अन्य देशों की अपेक्षा अधिक है। मीठे के सभी उत्पाद अधिक कैलोरी से युक्त होते हैं जिसके फलस्वरूप उपरोक्त बीमारियाँ होती हैं। स्टीविया हर्बल उत्पाद होने के कारण पूर्ण रूपेण सुरक्षित है क्योंकि इसका कोई साइड इफेक्ट नहीं है तथा वर्तमान में भारतीय बाजार में प्रचलित एवं बहुप्रयोगित स्वीटनर्स जैसे सैक्रीन, सुगर फ्री एवं स्पोर्टम की अपेक्षा पूर्णतया सुरक्षित है। भारतीय आंकड़े यह संकेत देते हैं कि इस देश में औसतन 18 प्रतिशत से अधिक लोग मधुमेह एवं इसी के आसपास हाइपरटेन्सन एवं मोटापे से ग्रस्त हैं। इसके अतिरिक्त स्टीविया रक्तचाप एवं रक्तशर्करा का नियमितीकरण करता है। यह पैंक्रियाज को इन्डयूस करता है जिससे इन्सुलिन उत्पन्न होता है। इसके प्रयोग से चर्म विकारों से मुक्ति मिलती है। विभिन्न उत्पादों का फ्लेवर बढ़ाने में इसका प्रयोग होता है यह एन्टी बैक्टीरियल एवं एन्टीवायरल एजेन्ट के रूप में कार्य करता है। इससे दातों एवं मसूढ़ों में होने वाली बीमारियों से मुक्ति मिलती है। इसका प्रयोग शक्कर के विकल्प एवं विस्थापन में प्रभावी रूप से किया जा सकता है विशेषतया मधुमेह रोगियों तथा कैलोरी रहित होने के कारण हाइपरटेन्सन एवं मोटापे से युक्त लोगों के लिये भी वरदान है। अब इसका उपयोग धीरे–धीरे चाय, बिस्कुट, काफी, मिठाईयों एवं अन्य मीठे उत्पाद के निर्माण में भी होने लगेगा। स्टीविया के एक एकड़ फसल में उतनी ही चीनी पाप्त होती है जो 36 एकड़ गन्ने से प्राप्त होती है इस प्रकार यह फसल गन्ने की चीनी के सर्वोत्तम विकल्प के रूप में उभरी है।

स्टीविया हेतु की गई उपयुक्त सिंचाई

1.1.4 स्टीविया की खेत की विधि

स्टीविया भारतवर्ष में कृषिकरण के लिए अपेक्षाकृत नया पौधा है तथा बड़े स्तर पर खेती अभी तक मुख्यतया कर्नाटक तथा महाराष्ट्र राज्यों तक ही सीमित है। इसके साथ–साथ अभी तक यह समझा जाता था कि यह पौधा ज्यादा ठंडी तथा ज्यादा गर्म (10 अशं से नीचे तथा 41 अंश से ऊपर) जलवायु सहन नही कर सकता तथा

केवल नेट हाउस में ही सफल हो सकता है, परन्तु हाल ही में बायोवेद शोध ा संस्थान द्वारा विकसित इसकी कुछ प्रजातियों ने इस अवधारणा को गलत सिद्ध कर दिया है तथा अब इसकी खेती देश के विभिन्न भागों मे सफलतापूर्वक की जाने लगी है। मध्य प्रदेश के साथ–साथ कई अन्य राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा, तथा उत्तर प्रदेश में भी खेती प्रारभं हो चुकी है जिनके परिणामों के आधार पर इसकी कृषि तकनीक को आसानी से अपनाया जा सकता है।

1.1.5 जलवायु

उन क्षेत्रों को छोड़कर जहां का न्यूनतम तापक्रम 5^{0}C से नीचे शीत ऋतु में चला जाता है, स्टीविया लगभग सभी क्षेत्रों में उगाया जा सकता है। ग्रीष्म ऋतु में होने वाला उच्च तापमान 43 अंश से उपर इस पौधे पर प्रभाव डाल सकता है तथा पौधे की वृद्धि रूक जाती है परन्तु यदि पहले से ही व्यवस्था कर ली जाए तथा स्टीविया की वही प्रजाति लगाई जाए तो उच्च तापक्रम में सफलतापूर्वक चल सके तथा पौधों को तेज गर्मी से बचाने के लिए इसका रोपण जैट्रोफा आदि के पौधों के बीच में किया जाए तो ज्यादा तापक्रम का प्रभाव नहीं होगा। कई किसान इस प्रकार का तापमान बनाये रखने की दृष्टि से पालीहाउस अथवा ग्रीन हाउस, नेट हाउस का उपयोग भी करतें हैं। ज्यादा छाया होने से

स्टीविया की नर्सरी

स्टीविया के पौधों का विकास बाधित होता है तथा उनका स्टीवियोसाइड तत्व भी प्रभावित होता है। इसी प्रकार जब सर्दियों में तापक्रम 5 अंश से नीचे चला जाता है तब पौधो की जड़े ठीक से खाद्य पदार्थों का अवशोषण नहीं कर पातीं जिससे उनकी वृद्धि प्रभावित होती है। दोनों ही स्थितियों में ज्यादा तापक्रम की स्थिति में भी तथा तापक्रम कम होने की स्थिति में भी सिचाई के अंतराल घटा दिए जाने चाहिए। इस प्रकार 5 से 43 अशं तक की जलवायु में तो स्टीविया बिना किसी बाधा के सफलतापूर्वक वृद्धि करता है परन्तु यदि तापमान इससे कम या ज्यादा हो तो उसे संतुलन में रखने हेतु उचित व्यवस्था करनी आवश्यक होगी।

रोपण हेतु उपलबध विभिन्न गुणवत्ताओं के पौध

1.1.6 मिट्टी की उपयुक्तता

स्टीविया के पौधे ऐसी मिट्टी में सर्वाधिक सफलतापूर्वक पनपते हैं जो नर्म हों, ज्यादा चिकनी न हो, जिसमें जीवाश्म की मात्रा काफी अधिक हो तथा जिसमें पानी ज्यादा देर तक रूकता न हो। इस प्रकार ज्यादा चिकनी तथा भारी कपासीय मिट्टियां इसके लिए उपयुक्त नहीं हैं। प्रायः रेतीली मिट्टियां, हल्की कपासीय तथा लाल मिट्टिया जिनका पी.एच. 6 से 8 के बीच हो, इसकी खेती के लिए उपयुक्त होगी।

1.1.7 पानी की आवश्यकता

स्टीविया को वर्ष भर पानी की आवश्यकता होती है। पानी अच्छी गुणवत्ता का होना चाहिए जिसकी विद्युत संचालकता निर्धारित मापदण्ड़ों के अनुरूप हो। यथा संभव सिचाई की व्यवस्था ड्रिप विधि से की जानी चाहिए क्योंकि स्प्रिंकलर पद्धति से पानी देने से फसल पर विभिन्न कीटाणुओं के प्रकोप की संभावना बढ़ सकती है।

1.1.8 स्टीविया की प्रमुख प्रजातियां

विश्व भर में स्वीटिया की लगभग 90 प्रजातियां विकसित की गई जोकि संबंधित क्षेत्रों की जलवायु के अनुरूप विकसित की गई है। ऐसा पाया

गमले में तैयार होते स्टीविया के पौध

खेत में तैयार होते स्टीविया के पौध

गया है कि विशेष रूप से दक्षिण भारतवर्ष में ऐसी भी प्रजातियां हैं जिनमें स्टीवियोसाइड् की मात्रा 3.5 प्रतिशत ही पाया जाता है। क्योकि स्टीवियोसाइड् की मात्रा पर ही स्टीविया का मूल्य निर्धारण होता है अतः ऐसी प्रजाति की कृषि की जानी चाहिए जिससे स्टीवियोसाइड की मात्रा ज्यादा से ज्यादा हो तथा जो अपने क्षेत्र की जलवायु के भी अनुरूप हो। वर्तमान में कृषिकरण की दृष्टि से स्टीविया की मुख्यतया तीन प्रजातियां प्रचलित है।

(अ) बी.आर.आई.123 : स्टीविया की इस प्रजाति का उदगम स्थल पेरुग्वे है तथा यह भारतवर्ष के दक्षिण पठारी क्षेत्रों के लिए ज्यादा उपयुक्त है। इस प्रजाति की वर्ष भर में 5 कटाइयां ली जा सकती हैं इस किस्म में ग्लुकोसाइड्स की मात्रा 9 से 12 प्रतिशत पायी गई है।

(ब) बी.आर.आई. 512 : यह प्रजाति उत्तरी भारत के लिए उपयुक्त है। इस प्रजाति में 9 प्रतिशत से 12 प्रतिशत ग्लुकोसाइड्स पाए जाते हैं तथा वर्ष में इसकी चार कटाइयां ली जा सकती हैं।

(स) बी.आर.आई. 128 : कृषिकरण की दृष्टि से स्टीविया की यह किस्म सर्वोत्तम मानी जाती है। इसमें 21 प्रतिशत तक ग्लुकोसाइड्स पाए गए हैं। यह प्रजाति भारतवर्ष के उत्तरी क्षेत्रों के लिए भी उतनी ही उपयुक्त है जितनी कि दक्षिणी भारतवर्ष के लिए। स्टीविया की इस किस्म का विकास बायोवद शोध संस्थान द्वारा किया गया है।

1.1.9 उपयुक्त पौध सामग्री का चयन

स्टीविया के व्यवसायिक कृषिकरण की दृष्टि से यह आवश्यक है कि ऐसी उपयुक्त प्रजाति का ही चयन किया जाए जो संबंधित क्षेत्र के अनुकूल हो। क्योकि कौन सी प्रजाति किस क्षेत्र के लिए ज्यादा अनुकूल होगी तथा किसमें कितना ग्लुकोसाइड्स तत्व होगा यह इस बात पर निर्भर करेगा कि आपने कौन सी प्रजाति लगाई है, अतः प्रजाति का चयन सोच कर किया जाना चाहिए। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित सावधानियां रखा जाना अपेक्षित होगा।

1.1.10 खेती हेतु स्टीविया के पौधे लेने से पूर्व रखी जाने वाली सावधानियां

स्टीविया के पौधे खरीदने से पूर्व किसानों द्वारा निम्नलिखत बिन्दुओं पर गौर

किया जाना अनिवार्य होगा।

☞ क्या आपके पौधे टिश्यू कल्चर विधि से तैयार किए गए हैं अथवा तने की कलम (स्टेम कटिंग) विधि से? टिश्यू कल्चर विधि से तैयार पौधे निःसन्देह उत्तम होते हैं।

☞ स्टीविया की जो प्रजाति आप ले रहें हैं क्या यह आपकी जलवायु में चल पाएगी?

☞ आपके द्वारा ली गई प्रजाति में स्टीवियोसाइड की मात्रा कितनी है?

☞ क्या आपने प्लाटिंग मेटेरियल प्रदायकर्ता से संबंधित प्रजाति के स्टीवियोसाइड तत्व की मात्रा के बारे में कोई गारंटी ली हैं?

निम्नानुसार चार प्रकार की पौध आपको रोपण हेतु मिल सकती है.

स्टीविया की सफलता पूवर्क खेती हेतु सम्पूर्ण तकनीकी जानकारी, मिट्टी परीक्षण, रोपे जाने वाले पौधों की उपलब्धता, जैविकखाद, दवा एवं अन्य उपकरण आदि के संदर्भ में पूर्ण जानकारी निदेशक बायोवेद शोध संस्थान 103/42 मो.ला. नेहरु रोड, इलाहाबाद या बायोवेद कृषि प्रौद्योगिकी ग्राम–रामवन गमन रोड, भगौतीपुर चौराहा, श्रृग्वेरपुर, इलाहाबाद से प्राप्त की जा सकती है।

1.1.11 भूमि की तैयारी तथा पौध रोपण की विधि

स्टीविया की खेती एक पंचवर्षीय फसल के रूप में की जाती है। क्योंकि एक बार रोपण के पश्चात सह फसल पांच वर्ष तक खेत में रहेगी अतः खेत की अच्छी प्रकार तैयारी करना आवश्यक होता है। इसके लिए सर्वप्रथम खेत की अच्छी प्रकार गहरी जुताई करके उसमें 3 टन केंचुआ खाद अथवा 6 टन कम्पोस्ट खाद के साथ–साथ 15 कि.ग्रा. बायोनीमा जैविक खाद खेत में मिला दी जाती है। खेत भूमि जनित रोगों तथा

स्टीविया के पौधे पर लगे फूल

दीमक आदि से सुरक्षित रहे इस दृष्टि से प्रति एकड़ 150 से 200 कि.ग्रा. नीम की पिसी हुई खली भी खेत तैयार करते समय खेत में मिला दी जाती है।

स्टीविया की सूखी पत्तियाँ

स्टीविया का रोपण मेड़ो के बेड्स पर किया जाता है। मेड़े बनाना विशेष रूप से इसलिए भी आवश्यक होता है ताकि वर्षा की स्थिति में अथवा सिंचाई करते समय पानी नालियों में से होते हुए निकल जाए तथा जल भराव की स्थिति न बने। जड़ों के विकास की दृष्टि से खेत में 1 से 1.5 फीट उंची मेड़े बनायी जाती है। इन मेड़ों की चौंड़ाई लगभग 2 फीट रखी जाती है।

मेड़ें बना लेने के उपरान्त इस पर स्टीविया की पौध का रोपण किया जाता है। इस उद्देश्य से स्टीविया की टिश्यूकल्चर विधि से तैयार की हुई पौध प्राप्त करके पौधे से पौध के मध्य 6 से 9 इंच तथा कतार से कतार के मध्य 40 40 सेमी. की जगह छोड़ दी जाती है ताकि पौध दोनों तरफ फैल सकें। इस प्रकार पौधे से पौधे के मध्य की दूरी 40–40 इंच रखते हुए स्टीविया का रोपण कर दिया जाता है। इस प्रकार एक एकड़ में स्टीविया के लगभग 30 से 40 हजार पौधे रोपित किए जाते हैं।

जहाँ तक स्टीविया के रोपण के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समय का प्रश्न है, तो ज्यादा गर्मी तथा सर्दी के समय को छोड़ कर इसकी रोपाई कभी भी की जा सकती है। इस प्रकार उत्तरी भारत के संदर्भ में दिसम्बर–जनवरी एवं अप्रैल–मई माह को छोड़कर इसकी रोपाई कभी भी की जा सकती है। वैसे इसकी रोपाई के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माह हैं सितम्बर से नवम्बर तथा फरवरी से अप्रैल।

1.1.12 सिंचाई की व्यवस्था

स्टीविया की फसल को वर्ष भर निरन्तर सिंचाई की आवश्यकता होती है। यूं तो सिंचाई के लिए स्प्रिंकलर्स का उपयोग भी किया जा सकता

है परन्तु स्टीविया के लिए सिंचाई का सर्वोत्तम माध्यम हैं ड्रिप विधि का ही उपयोग किया जाना चाहिए।

1.1.13 खरपतवार नियन्त्रण तथा निराई–गुड़ाई

स्टीविया की फसल की निरन्तर सफाई करते रहना चाहिए तथा जब भी किसी प्रकार के खरपतवार फसल में पनपें उन्हें उखाड़ दिया जाना चाहिए। नियमित अंतरालों पर खेत की निराई–गुड़ाई भी करते रहना चाहिए जिससे ज़मीन की नमी बनी रहे। खरपतवार नियंत्रण का कार्य हाथ से ही किया जाना चाहिए तथा इस हेतु किसी प्रकार के रासायनिक खरपतवारनाशी का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।

1.1.14 खाद एवं अन्य पोषक तत्वों की आवश्यकता

एक निरन्तर वृद्धि करने वाली फसल होने के कारण स्टीविया को काफी अधिक मात्रा में पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। खेत तैयार करते समय डाली जाने वाली खाद के साथ साथ प्रत्येक कटाई के उपरान्त 500 कि.ग्रा. केंचुआ खाद तथा 15 कि.ग्रा. बायोनीमा जैविक खाद पौधों के पास–पास डाल दी जानी चाहिए। क्योंकि स्टीविया सीधे ग्रहण की जाने वाली वनस्पति है अतः यथा संभव फसल में किसी भी प्रकार के रासायनिक खादों अथवा टॉनिकों का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।

1.1.15 फसल से फूलों का हटाना :

पत्तियों में स्टीविया में स्टीवियोसाइड्स मौजूद रहता है अतः इनकी वृद्धि के लिए फूलों को पेड़ से हटा दिया जाना चाहिए। पौध रोपड़ के बाद फूलों को 30वें, 45वें, 60वें, 85वें दिन कटाई के वक्त हटा देना चाहिए। पुरानी फसल से उसी फसल की स्थिति में कटाइ के 40 दिनों बाद फूल आ जाते हैं इसलिए कटाई के वक्त फूल हटा दिये जाने चाहिए।

1.1.16 फसल पर होने वाले प्रमुख रोग तथा उनका नियन्त्रण

स्टीविया पर अधिकांशतः किसी विशेष रोग अथवा कीट का प्रकोप नहीं देखा गया है परन्तु कई बार भूमि में बोरान तत्व की कमी के कारण लीफ स्पॉट का प्रकोप हो सकता है। इसके निदान हेतु 6 प्रतिशत बोरेक्स का छिड़काव किया जा सकता है। वैसे नियमित अंतरालों पर गौमूत्र अथवा नीम के तेल को पानी में मिश्रित करके उसका छिड़काव करने से फसल पूर्णतया

रागों अथवा कीटों, कृमियों से मुक्त रहती है। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि रोग नियन्त्रण हेतु किसी प्रकार के रासायनिक कीटनाशक का उपयोग न किया जाए। क्योंकि स्टीविया सीधे मानव उपयोग की वस्तु है अतःयदि रासायनिक कीटनाशकों का प्रभाव इस उत्पाद पर देखा जाता है तो उसका असर इसके मार्केट तथा इसकी दरों पर भी पड़ेगा। वैसे फसल पर रोग अथवा कीट ब्याधि आने से पूर्व ही उसे रोकने हेतु प्रभावी कदम उठा लिए जाने चाहिए जिसके लिए एक सावधानीपूवर्क कदम बचाव के तरीके के रूप में नियमित अंतरालों पर गौमूत्र का छिड़काव किया जाना एक अच्छा कदम हो सकता है। बायोपैकुनिल का छिड़काव करना उचित होगा।

1.1.17 फसल की कटाई

रोपण के लगभग चार माह के उपरान्त स्टीविया की फसल प्रथम कटाई के लिए तैयार हो जाती है। कटाई का कार्य पौधो पर फूल आने के पूर्व ही कर लिया जाना चाहिए क्योकि फूल आ जाने से पौधे में स्टीवियोसाइड्स की मात्रा घटने लगती है जिससे इसका उचित मूल्य नहीं मिल पाता। इस प्रकार प्रथम कटाई चार माह के उपरान्त तथा आगे की कटाइयां प्रत्येक 3–3 माह में आने लगती हैं। कटाई चाहे पहली हो अथवा दूसरी अथवा तीसरी, ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि किसी भी स्थिति में कटाई का कार्य पौधो पर फूल आने के पूर्व ही किया जाए। कटाई करने की दृष्टि से पूरे पौधे को भी काटा जा सकता है तथा पत्तों को भी चुना जा सकता है। पूरे पौधे को काट लेने के उपरान्त भी उसके पत्तों को भी चुना जा सकता है। पूरा पत्तों को तोड़ लेने के उपरान्त उन्हें छाया में सुखाया जाना चाहिए। प्रायः 3–4 रोज तक छाया में सुखा लिए जाने पर पत्ते पूर्णतया नमी रहित हो जाए हैं तथा तदुपरान्त इन्हें बोरो में पैक करके बिक्री हेतु प्रस्तुत कर दिया जाता है। जहां तक इनकी बिक्री का प्रश्न है तो स्टीविया के पत्ते भी बेचे जा सकते है तथा इनका सार भी निकाला जा सकता है। वैसे किसान के स्तर पर इसके सूखे पत्ते बेचे जाना ही उपयुक्त होता है।

1.1.18 कुल उपज तथा प्राप्तियां

एक बहुवर्षीय फसल होने के कारण स्टीविया की उपज में प्रत्येक कटाई के साथ निरन्तर बढ़ोतरी होती जाती है। हालांकि उपज की मात्रा

कई कारकों जैसे लगाई गई प्रजाति, फसल की वृद्धि, कटाई का समय आदि पर निर्भर करता है, परन्तु चार कटाइयों में प्रायः 2 से 4 टन तक सूखे पत्तों का उत्पादन हो सकता है। वैसे एक औसतन फसल से वर्ष भर में लगभग 2.5 टन सूखे पत्ते प्राप्त हो जाते हैं।

स्टीविया के पत्तों की बिक्री दर भी कई कारकों पर निर्भर करती है जिसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है इनमें उपस्थित स्टीवियोसाइड्स की मात्रा जिनके अनुसार इनकी बिक्री दर 60 से 120 रु. प्रति किलोग्राम तक हो सकती है। वैसे यदि औसतन 2.5 टन पत्तों का उत्पादन हो तथा इनकी बिक्री दर 100रु. प्रति किलोग्राम हो इस फसल से प्रतिवर्ष किसान को 2.5 लाख रु. प्रति एकड़ की प्राप्तियां होंगी। फसल से होने वाले लाभ एवं हानि की गणना यदि पॉच वर्षीय फसल के आधार पर की जाए तो इस फसल से किसान को पाँच वर्षों में लगभग 8.40 लाख रु. का लाभ होगा अनुमानित है।

1.1.19 स्टीविया की विपणन व्यवस्था

एक अत्यधिक उपयोगी उत्पाद होने की वजह से स्टीविया का विपणन काफी आसान हो सकता है। क्योंकि यह जन सामान्य को इसके बारे में जानकारी देकर इसका मार्केट स्थानीय रूप से भी बनाया जा सकता है। वैसे देश की कई प्रमुख कम्पनियां इसे पुनर्खरीदी आधार पर प्रोत्साहित कर रही है स्टीविया के विपणन हेतु बायोवेद शोध संस्थान 103/42, मोतीलाल नेहरु रोड, इलाहाबाद से सम्पर्क किया जा सकता है।

1.1.20 स्टीविया की खेती के लिए पौध सामग्री की व्यवस्था

यूं तो कई पौधे प्रदानकर्ताओं द्वारा स्टीविया की पौध प्रदान की जाती है परन्तु पौध की खरीददारी सतर्कतापूर्वक की जानी चाहिए तथा पौध सामग्री खरीदते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि पौध टिश्यूकल्चर विधि से तैयार हो तथा उसमें काफी अच्छी जड़ें विकसित हों जैसा कि पूर्व में बताया गया है इस सन्दर्भ में बायोवेद शोध संस्थान 103/42, मोतीलाल नेहरु रोड, इलाहाबाद से सम्पर्क किया जा सकता है।

1.1.21 स्टीविया की आर्थिकी

क.	खर्च की मदें	प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष	तृतीय वर्ष	चतुर्थ वर्ष	पॉचवां वर्ष
1	भूमि की तैयारी तथा बेड्स निर्माण की लागत	15000	–	–	–	–
2	ड्रिप इरीगेशन व्यवस्था पर व्यय	30000	–	–	–	–
3	पौध सामग्री की लागत 4 रु.प्रति पौधे की दर से 30,000 पौधों हेतु	120000	–	–	–	–
4	पौधों की रोपाई पर व्यय	1000	–	–	–	–
5	खाद तथा टॉनिकों आदि पर व्यय	11000	5000	5000	5000	5000
6	निकाई–गुड़ाई की लागत	3000	3000	3000	3000	3000
7	पानी आदि देने तथा फसल की देखरेख पर व्यय		2500	2500	2500	2500
8	शेड व्यवस्था पर व्यय जैट्रोफा अथवा अन्य पौधों के रोपण एवं रख–रखाव पर व्यय	5000	1500	1500	1500	1500
9	फसल कटाई तथा सुखाने आदि पर व्यय	5000	5000	5000	5000	5000
10	फसल की पैकिंग तथा ट्रांसपोर्टेशन आदि पर व्यय	15000	15000	15000	15000	15000
11	अन्य तथा आकस्मिक व्यय	2000	12000	12000	12000	12000
	कुल योग	**2,09,500**	**44,000**	**44,000**	**44,000**	**44,000**
ख	**प्राप्तियां** फसल की बिक्री से प्राप्तियां (100 रु. प्रति कि.ग्रा की दर से)					
	उत्पादन	2.5 टन सूखे पत्ते	2.5 टन सूखे पत्ते	2.5 टन सूखे पत्ते	2.5 टन सूखे पत्ते	2.5 टन सूखे पत्ते
	प्राप्तियां	**2.5 लाख रु.**	**2.5 लाख रु.**	**2.5 लाख रु.**	**2.5 लाख रु.**	**2.5 लाख रु.**
ग	**लाभ**	**15500**	**2.06 लाख रु.**	**2.06 लाख रु.**	**2.06 लाख रु**	**2.06 लाख रु.**

❖❖❖

इकाई– 1

लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट (2005) के अनुसार विश्व में मधुमेह रोगियों की संख्या है
2. स्टीविया का उत्पत्ति स्थान कहां माना जाता है?
3. स्टीविया के पौध की लम्बाई होती है?
4. चीनी के विकल्प के रूप में कौन सा पौधा प्रयुक्त किया जा सकता है?
5. स्टीविया में पाये जाने वाले प्रमुख घटक कौन सा है?

खाली स्थान भरो :

1. स्टीविया की खेती एक .....फसल के रूप में की जाती है।
2. स्टीविया अपनी सामान्य अवस्था में आम शक्कर से लगभग..... .....से.....गुना ज्यादा मीठा होता है।
3. विश्व भर में स्टीविया की लगभग.....प्रजातियां विकसित की गई हैं।
4. स्टीविया का रोपण.....पर किया जाता है।
5. स्टीविया की रोपाई के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माह हैं..... .....से.....तथा.....से।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न :

1. स्टीविया की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बतायें तथा इसकी उपयोगिता का वर्णन करें।
2. स्टीविया की कृषिकरण की तकनीकी लिखें।
3. स्टीविया की आर्थिकी का वर्णन करें।

❖❖

इकाई– 2

2.1 औषधीय एवं सगंध पौधों की खेती–लेमनग्रास अथवा नींबू घास

2.1.1 भूमिका

2.1.2 उद्देश्य

2.1.3 लेमनग्रास की रासायनिक संरचना

2.1.4 नींबू घास की खेती की विधि भूमि एवं जलवायु

2.1.5 भूमि की तैयारी

2.1.6 खाद की आवश्यकता

2.1.7 लेमनग्रास की बिजाई हेतु बीज अथवा प्लांटिंग मेटेरियल

2.1.8 बिजाई का समय

2.1.9 बिजाई की विधि

2.1.10 सिंचाइ की आवश्यकता

2.1.11 निराई तथा गुड़ाई की आवश्यकता

2.1.12 लेमनग्रास की फसल में होने वाले प्रमुख रोग तथा इसकी कीट–पंतगों से रक्षा

2.1.13 फसल की कटाई

2.1.14 पत्तियों से तेल निकालना

2.1.15 फसल से प्राप्त होने वाले तेल की मात्रा

2.1.16 लेमनग्रास की विभिन्न प्रजातियाँ/किस्में

2.1.17 लेमनग्रास की खेती से प्राप्तियाँ

2.1.18 लेमनग्रास की खेती हेतु प्लांटिंग मेटेरियल की प्राप्ति

2.1.19 लेमनग्रास के तेल की बिक्री हेतु कहां सम्पर्क करें

2.1.20 लेमनग्रास की खेती पर प्रति एकड़ आने वाली अनुमानित लागत तथा आय का विवरण

इकाई –2

2.1 औषधीय एवं सगंध पौधों की खेती

लेमन ग्रास अथवा नीबू घास

2.1.1 भूमिका

लेमनग्रास अथवा नींबू घास, जिसका वैज्ञानिक नाम ''सिम्बोपोगान फ्लेक्सुओसस'' है, यूँ तो काफी भारतीय घरों में लगाई हुई देखी जा सकती है परन्तु वहाँ पर अधिकांशतः इसकी पत्तियों का उपयोग चाय में डालने हेतु किया जाता है। इसे चायना ग्रास, पूर्वी भारतीय नींबू घास, मालाबार घास अथवा कोचीन घास के नाम से भी जाना जाता है। इसकी पत्तियों में एक मधुर तीक्ष्ण गंध होती है जिन्हें चाय में डालकर उबालकर पीने से ताजगी तो मिलती ही है, साथ ही सर्दी आदि से राहत भी मिलती है।

लेमनग्रास अथवा नींबू घास भारतवर्ष के विभिन्न भागों में उत्पन्न होने वाली वह प्रमुख घास हे जिसका उपयोग संगंध उद्योग में भी होता है तथा औषधीय कार्यों हेतु भी। इसके साथ–साथ इसे विभिन्न खाद्य पदार्थों के उत्पादन में भी उतनी ही बखूबी प्रयुक्त किया जाता है जितना पेय पदार्थों के उत्पादन में। इतने अधिक विविध उपयोगों में प्रयुक्त होने के कारण देश के विभिन्न भागों के किसान इसकी खेती को काफी बड़ी मात्रा में अपनाने लगे हैं तथा जिस गति से इसका देशीय तथा अंर्तराष्ट्रीय बाजार बढ़ रहा है उससे यह सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि आने वाले कुछ ही वर्षों में लेमनग्रास की फसल औषधीय एवं सुगंधीय पौधों के कृषिकरण से जुड़े किसानों की सर्वाधिक चहेती फसल के रूप में उभरेगी।

कटाई के लिए तैयार लेमनग्रास की फसल

लेमनग्रास का उत्पत्ति स्थल भारत ही माना जाता है। यद्यपि विश्व के

कई भागों में यह जंगली रूप में पाया जाता है। परन्तु वेस्ट इंडियन द्वीप समूहों, मध्य अमेरिकी देशों, दक्षिणी अमेरिका, थाईलैण्ड, बंगलादेश, कैमरून द्वीपसमूहों, मैडागास्कर तथा चीन आदि देशों में तेल की प्राप्ति हेतु इसकी खेती भी की जाती है। भारतवर्ष में भी हालांकि इसकी विशेषताओं तथा उपयोगों से लोग सदियों से परिचित थे परन्तु हमारे देश में व्यवसायिक उपयोग हेतु इसकी व्यवस्थित खेती केरल राज्य में लगभग 90 वर्ष पूर्व प्रारंभ हुई। वर्तमान में देश के लगभग सभी भागों में इसकी बड़े पैमाने पर खेती होना प्रारंभ हो गई है। वर्तमान में भारतवर्ष के जिन राज्यों में यह बड़ी मात्रा में उगाया जा रहा है, वे हैं– केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल आदि।

लेमनग्रास की मुख्यतया दो किस्में पाई जाती हैं– पूर्वी भारतीय लेमनग्रास अथवा असली लेमनग्रास जिसे सिम्पोपोगान फ्लैक्सुओसस कहा जाता है तथा पश्चिमी भारतीय (दक्षिणी अमेरिकी) घास जिसे सिम्बोपोगान सिट्रेस के नाम से जाना जाता है। इनमें से सिम्बोपोगान फ्लैक्सुओसस से आसवित किए जाने वाला तेल जिसे पूर्वी भारतीय तेल अथवा कोचीन तेल (क्योंकि इसको कोचीन की बन्दरगाह से बाहर भिजवाया जाता था) के नाम से भी जाना जाता है, की गुणवत्ता उच्च होती है तथा व्यवसायिक दृष्टि से इसे ही ज्यादा उपयोगी माना जाता है। इन दो प्रमुख किस्मों के अतिरिक्त लेमनग्रास की तीसरी किस्म है– सिम्बापोगान पैण्डुलस जिसे उत्तरी भारतीय लेमनग्रास के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि यह मुख्यतया जम्मू तथा अन्य उत्तरी भारतीय क्षेत्रों में पाई जाती है। लेमनग्रास की एक अन्य किस्म सिम्बोपोगान खासिएनम भी है। उपरोक्त समस्त किस्मों में से व्यवसायिक उपयोगिता की दृष्टि से राष्ट्रीय एवं अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर सर्वाधिक मांग लेमनग्रास की सिम्बोपोगान फ्लैक्सुओसस किस्म की है, फलतः व्यवसायिक खेती की दृष्टि से लेमनग्रास की यही प्रजाति सर्वश्रेष्ठ है।

2.1.2 उद्देश्य : लेमनग्रास की खेती से संबंधित सभी वैज्ञानिक जानकारियाँ उपलब्ध कराना।

2.1.3 लेमनग्रास की रासायनिक संरचना

एक 'जी.एल.सी.' रिपोर्ट के अनुसार लेमनग्रास के तेल में पाए गए प्रमुख

घटक निम्नानुसार हैं– सिट्रल 'ए' (46.60 प्रतिशत), सिट्रल 'बी' (27.7 प्रतिशत), फेरेनसॉल (12.8 प्रतिशत), फर्नीसाल (3 प्रतिशत), बोर्नियोल (1.9 प्रतिशत), ट्रिफेनाइल एसीटेट (0.90 प्रतिशत), अल्फा टर्पीनियोल (2.25 प्रतिशत), टर्पीनीन (0.5 प्रतिशत), बीटा टर्पीनियोल (0.40 प्रतिशत), एवं जिरेनियाल तथा नीरॉल (1.5 प्रतिशत)। मध्यभारत की स्थितियों में प्रायः 75 प्रतिशत से अधिक सिट्रल वाले लेमनग्रास ऑयल को अच्छी गुणवत्ता का तेल माना जाता है।

घरेलू स्तर पर लगाने के साथ–साथ हमारे देश के कई भागों में इसकी व्यवसायिक स्तर पर खेती भी हो रही है। वर्तमान में इसकी विधिवत् खेती केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक, आसाम, पश्चिमी बंगाल, उत्तरप्रदेश एवं महाराष्ट्र राज्यों में हो रही है। मध्यप्रदेश में यद्यपि इसकी खेती अभी अपनी प्रारंभिक अवस्था में ही है परन्तु इसके प्राथमिक परिणाम दर्शाते है कि इसकी खेती के लिए मध्य प्रदेश की जलवायु सर्वाधिक अनुकूल है। अभी मध्य प्रदेश के विभिन्न भागों में लगभग 50 किसानों द्वारा इसकी खेती की जा रही है जिसके शीघ्र ही कई गुना ज्यादा बढ़ने की संभावना है।

नींबू घास की व्यवसायिक खेती इसके तेल की प्राप्ति हेतु की जाती है जोकि इसकी पत्तियों को आसवित करके निकाला जाता है। इसके तेल का मुख्य घटक सिट्रल होता है। नींबू घास के तेल में 80 से 90 प्रतिशत तक सिट्रल नामक तत्व की उपस्थित के कारण ही नींबू घास के तेल में से एक नींबू जैसी तीक्ष्ण सुगंध आती है। संभवतया इसी नींबू जैसी सुगंध के कारण ही इस घास का नाम नींबू घास पड़ा होगा।

नींबू घास के तेल के मुख्य उपयोग :

नींबू घास के तेल के अनेकों उपयोग है। इसके तेल में उपस्थित सिट्रल से अल्फा आयोनोन तथा बीटा आयोनान तैयार किए जाते हैं। बीटा आयोनोन को आगे संश्लेषित करके ''विटामिन ए'' तैयार किया जाता है जिसका विभिन्न दवाइयों के निर्माण उपयोग उच्च कोटि के इत्रों के निर्माण, विभिन्न सौन्दर्य प्रसाधनों, सौंदर्य सामग्रियों तथा साबुनों के निर्माण में किया जाता है। अधिकांशतः ''नींबू की खुशबू'' तथा ''नींबू की ताजगी'' वाले साबुनों का मुख्य घटक सिट्रल ही होता है। इस प्रकार विभिन्न उत्पादों के निर्माण में

लेमनग्रास आयल का उपयोग निरंतर बढ़ता जा रहा है जिसके कारण इसकी न केवल देशीय बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी माँग निरंतर बढ़ रही है। बढ़ती हुई माँग के साथ–साथ इसके मूल्यों में भी आश्चर्यजनक रुप से वृद्धि हुई है जिसके कारण नींबू घास की खेती करना व्यवसायिक रुप से भी काफी अधिक लाभकारी हो गया है।

मुख्यतया नींबू घास की दो प्रजातियाँ प्रचलन में हैं – सिम्बोपोगान फ्लैक्सुओसस तथा सिम्बोपोगान सिट्रस। इनमें से सिम्बोपोगान फ्लैक्सुओसस का प्राप्ति स्थान मालाबार तट माना जाता है तथा अब भारत में इसकी काफी अधिक खेती हो रही है। नींबू घास की दूसरी मुख्य किस्म – सिम्बोपोगान सिट्रस का प्राप्ति स्थल दक्षिणी पूर्वी एशियाई देश है। वर्तमान में इसकी खेती मुख्यतया मेडागास्कर, कैमरून दीप समूहों, ब्राजील, चीन तथा इण्डोनेशिया में की जा रही है। इनके साथ–साथ लैमनग्रास की एक अन्य प्रजाति सिम्बोपोगान पैण्डुलस है जिसे ''जम्मू लेमनग्रास'' भी कहा जाता है। इस प्रजाति का उपयोग भी लेमनग्रास तेल की प्राप्ति हेतु किया जाता है हालाँकि काफी कम मात्रा में।

लेमनग्रास की बिजाई हेतु प्रयुक्त की जाने वाली स्लिप

वर्तमान में भारत तथा ग्वाटेमाला लेमनग्रास तेल के प्रमुख उत्पादक देश है। इनके साथ–साथ चीन, ब्राजील, इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड तथा श्रीलंका में भी लेमनग्रास तेल का उत्पादन किया जा रहा है। भारतवर्ष में वर्तमान में इसकी लगभग 15000 एकड़ में खेती हो रही है जिससे लगभग 600 टन तेल का उत्पादन प्रतिवर्ष हो रहा है जबकि सम्पूर्ण विश्व में लेमनग्रास तेल का कुल उत्पादन लगभग 1300 टन प्रतिवर्ष है। एक अनुमान के अनुसार भारत से प्रतिवर्ष लगभग 70 टन लेमनग्रास तेल का निर्यात किया जाता है।

लेमनग्रास के पत्तों का उपयोग

लेमनग्रास के सूखे पत्ते भी काफी उपयोगी होते हैं। इसके पत्तों का बहुधा उपयोग हर्बल टी, लेमन टी अथवा ऐसे ही अन्य चाय के निर्माण हेतु किया जाता है। हर्बल चाय का उत्पादन करने वाली अधिकांश कम्पनियों द्वारा हर्बल चाय के निर्माण में इसका उपयोग किया जाता है। हाल ही में भारतवर्ष से (विशेषतया मध्य प्रदेश से) इसका काफी मात्रा में इंग्लैण्ड तथा फ्रान्स जेसे विकसित देशों को निर्यात भी किया गया है।

लेमनग्रास की स्लिप्स की बिजाई करती महिलाएं

साथ-साथ लेमनग्रास तथा इसके तेल का उपयोग कई अन्य कार्यों हेतु भी किया जाता है। इसके काढ़े के सेवन से बुखार उतर जाता है तथा ''कूलनेस'' का अहसास होता है; इसके काढ़े को काली मिर्च के साथ सेवन कने से कठिनाई वाले मासिक धर्म में राहत मिलती है; जोड़ों के दर्द तथा गठिया में इसका काढ़ा तथा तेल उपयोगी रहता है; लेमनग्रास के पत्तों का पेस्ट रिंगवार्म के उपचार में लाभकारी रहता है; लेमनग्रास पाचन क्रिया को सुधारने में भी उपयोगी होता है; इसके सेवन से पेशाब से संबंधित समस्याओं का उपचार होता है तथा पेट एवं पाचन नली की गैस से संबंधित समस्याओं से भी निजात मिलती है।

उपरोक्तानुसार देखा जा सकता है कि लेमनग्रास एक बहुपयोगी घास है जो न केवल सुगंधीय दृष्टि से बल्कि औषधीय दृष्टि से भी काफी उपयोगी है। भारतीय लेमनग्रास के पत्तों तथा इसके तेल की विदेशों में मांग बढ़ने के फलस्वरूप इसकी बड़े स्तर पर खेती की सफलता की संभावनाएं और भी जयादा बढ़ गई हैं तथा किसानों में इसकी खेती के प्रति रुचि बढ़ती जा रही है। इसकी उपयोगिता तथा बढ़ते जा रहे बाजार को देखते हुए इसकी खेती को बड़े स्तर पर अपनाया जाना समय की मांग है।

2.1.4 नीबू घास की खेती की विधि, भूमि एवं जलवायु :

नीबू घास की खेती के लिए उष्ण तथा समशीतोष्ण जलवायु उपयुक्त रहती है। ऐसे क्षेत्र जहाँ की जलवायु गर्म तथा आर्द्र हो, जहाँ पर्याप्त धूप पड़ती हो तथा जहाँ वर्ष भर 200 से 250 सेंटीमीटर तक सुवितरित वर्षा होती हो अथवा सिंचाई के पर्याप्त साधन हो वे इसकी खेती के लिए आदर्श होते हैं। यद्यपि यह लेटेराइट मिट्टियों, कम वर्षा वाले, कम उपजाऊ तथा बारानी क्षेत्रों की अपेक्षा इन क्षेत्रों में उपज की मात्रा काफी अधिक बढ़ जाएगी। उदाहरणार्थ उपजाऊ भूमियों में इसकी वर्ष भर में पाँच फसलें ली जा सकती हैं, जबकि अपेक्षाकृत कम उपजाऊ तथा बारानी क्षेत्रों में वर्ष भर में दो से तीन फसलें ही ली जा सकेगी। रेतीली तथा लाल मिट्टियों में इसकी खेती करने के लिए पर्याप्त खाद की आवश्यकता होगी। अतः यूँ तो यह लगभग सभी प्रकार की भूमियों में उपजाई जा सकती है परन्तु उपजाऊ दोमट मिट्टी में इसकी अच्छी बढ़त होती है। ऐसे क्षेत्र जहाँ जल भराव की संभावना हो, इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं माने जाते।

2.1.5 भूमि की तैयारी :

प्रायः एक बार लगा देने के बाद नींबू घास की फसल पाँच वर्ष तक ली जा सकती है। अतः फसल की बिजाई से पूर्व आवश्यक है कि खेत की अच्छी तरह से जुताई की जाए। इसके लिए मिट्टी पलटने वाले हल से या हैरो से आड़ा–तिरछा (क्रास) जुताई करनी चाहिए। मिट्टी को दीमक आदि के प्रकोप से मुक्त रखने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि आखिरी जुताई के समय 15 किलोग्राम बायोनीमा प्रति एकड़ की दर से खेत में मिला दिया जाए। इसके उपरांत पाटा चलाकर खेत को समतल कर दिया जाना चाहिए।

कटाई के उपरान्त तेजी से बढ़ती लेमनग्रास की फसल

2.1.6 खाद की आवश्यकता :

अच्छी उपज के लिए खेत में पर्याप्त खाद डाला जाना लाभकारी होता है। इस संदर्भ में यदि खेत में गोबर की सड़ी हुई खाद अथवा कम्पोस्ट खाद डाली जाए तो यह सर्वाधिक उपयुक्त होगा। गोबर की यह खाद एक तो खेत तैयार करते समय खेत में मिला दी जानी चाहिए, दूसरे इसका एक–एक डोज फसल की प्रत्येक कटाई के उपरांत दे दिया जाना चाहिए। फसल की कटाई के उपरांत यह इस प्रकार दिया जाना चाहिए कि खाद पौधों की जड़ों के पास ही डालें। इस प्रकार इसके वर्ष भर में पाँच खुराक दिए जा सकते है। गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट की मात्रा खेत तैयार करते समय 10 टन प्रति एकड़ तथा प्रत्येक कटाई के उपरान्त 5 टन प्रति एकड़ डाली जाना उपयुक्त होगा।

जहाँ तक रासायनिक खादों का प्रश्न है तो औसतन 60 किग्रा0 नाइट्रोजन, 16 किग्रा0 फास्फोरस तथा 16 किग्रा0 पोटाश प्रति एकड़ डाले जाने की संतुति इस फसल के लिए की जाती है। इनमें से संपूर्ण फास्फोरस, पोटाश तथा नाइट्रोजन का 1/3 भाग खेत तैयार करते समय ही डाल दिया जाना चाहिए जबकि नाइट्रोजन के शेष खुराक प्रति दो माह में अथवा फसल की प्रत्येक कटाई के उपरांत डाले जाने चाहिए।

2.1.7 लेमनग्रास की बिजाई हेतु बीज अथवा प्लांटिंग मेटेरियल :

नींबू घास की बिजाई भी की जा सकती है तथा स्लिप से भी बीज से बिजाई करने की दशा में सर्वप्रथम बीजों से नर्सरी तैयार की जाती है तथा तदुपरांत नर्सरी में तैयार किए हुए पौधों की खेत में रोपाई की जाती है। (वैसे यह विधि ज्यादा उपयुक्त नहीं मानी जाती)।

स्लिप्स की बिजाई के उपरान्त सिंचाई व्यवस्था

अधिकांशतः लेमनग्रास की बिजाई स्लिप से ही की जाती है तथा यही विधि सर्वाधिक उपयोगी, लाभकारी तथा सुविधा जनक भी है। स्लिप से बिजाई करने की विधि में सर्वप्रथम लेमनग्रास के पुराने पूर्णतया विकसित पौधों/जुट्टों को उखाड़कर उनके साथ लगी पत्तियों तथा पुरानी जड़ों को काट लिया जाता है। तदुपरांत इन जुट्टों में से एक–एक स्लिप को अलग कर लिया जाता है। यही स्लिप्स लेमनग्रास के बीजों अथवा प्लांटिंग मेटेरियल के रूप में प्रयुक्त किए जाते है। प्रायः एक एकड़ के क्षेत्र में लगभग 15000 स्लिप्स की आवश्यकता होती है (एक एकड़ में कितने पौधे स्लिप्स) लगेंगी यह मुख्यतया भूमि की उपजाऊ शक्ति तथा कई अन्य कारकों पर निर्भर करता है। वैसे पौधे से पौधे के मध्य 2 × 2 फुट अथवा 1.5 × 2 की दूरी काफी उपयुक्त मानी जाती है तथा इस मान से एक एकड़ में लगभग 12000 से 15000 पौधे लगाएं जाते हैं) तथा स्लिप्स की कीमत 50 पैसे प्रति स्लिप से लेकर 2 रुपये प्रति स्लिप तक होती है।

उच्च पी.एच. वाली भूमि में भी अच्छी प्रकार पनपती लेमन ग्रास

2.1.8 बिजाई का समय :

प्रायः देखा गया है कि यदि सिंचाई की पर्याप्त सुविधा उपलब्ध हो तो नींबू घास की बिजाई वर्ष में कभी भी (ज्यादा गर्मी के समय को छोड़कर) की जा सकती है, परन्तु पैदावार की दृष्टि से देखा जाए तो इसकी बिजाई के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समय है – फरवरी – मार्च तथा जुलाई – अगस्त माह। ऐसा देखा गया है कि अन्य महीनों की अपेक्षा फरवरी – मार्च में लगाई गई फसल से प्रथम वर्ष में 20 प्रतिशत ज्यादा पैदावार मिलती है।

2.1.9 बिजाई की विधि :

जैसा कि उपरोक्तानुसार वर्णित है, लेमनग्रास की बिजाई हेतु इसके पुराने पौधों से ली गई स्लिप्स का उपयोग किया जाता है। यद्यपि बिजाई के लिए कोई भी माध्यम प्रयुक्त किया जा सकता है परन्तु यथासंभव छोटी कुदाल का उपयोग किया जाना ज्यादा उपयोगी रहेगा। इस प्रकार छोटी कुदाल से 5 से 8 सेंटीमीटर गहरे गढ्ढे करके इसकी रोपाई कर देनी

चाहिए। जड़ों को ज्यादा गहरा नहीं रोपना चाहिए अन्यथा जड़ें गलकर सड़ सकती हैं तथा इससे पौधों का जमाव प्रभावित हो सकता है। स्लिप की रोपाई से पूर्व इसके साथ लगी पत्तियाँ तथा पुरानी जड़ें काट दी जानी चाहिए। गड्ढे में स्लिप इस तरह खड़ी करके रोपी जानी चाहिए जिससे गड्ढे में स्लिप सीधी खड़ी रहे तथा इसकी जड़ें मुड़ें नही। रोपाई के उपरांत स्लिप का निचला हिस्सा मिट्टी से पूरी तरह दबा दिया जाना चाहिए। रोपाई के बाद खेत में पानी छोड़ दिया जाना चाहिए परन्तु ध्यान रहे कि पानी पौधों के पास खड़ा न रहे अर्थात् ''वाटर लॉगिंग'' नहीं होनी चाहिए। यद्यपि पौधों के मध्य की दूरी का निर्धारण काफी कुछ तो भूमि की उपजाऊ शक्ति पर निर्भर करता है, फिर भी पौधे से पौधा तथा कतार से कतार के बीच 60×30 अथवा 60×45 अथवा 60×60 सेंटीमीटर की दूरी एक उपयुक्त दूरी मानी जाती है।

2.1.10 सिंचाई की आवश्यकता :

यद्यपि एक बार जम जाने (जड़ पकड़ लेने) के बाद लेमनग्रास की फसल को ज्यादा पानी की आवश्यकता नहीं होती, फिर भी यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि भूमि गीली रहनी चाहिए अतः समय–समय पर पानी दिया जाना आवश्यक होगा। प्रायः गर्मियों के समय 10 दिनों के अंतराल पर तथा सर्दियों के समय 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई की जाना फसल की उचित बढ़ोत्तरी के लिए उपयुक्त होगा।

2.1.11 निराई तथा गुड़ाई की आवश्यकता :

ऐसा देखा गया है कि लेमनग्रास की फसल में केवल पहली बार ही ज्यादा खरपतवार होती है तथा अगली कटाइयों में खरपतवार की मात्रा घटती जाती है। संभवतया इसकी वजह यह हो सकती है कि लेमनग्रास के पौधों की पत्तियाँ इतनी ज्यादा फैल जाती है कि वे खरपतवार को पनपने ही नहीं देती। अतः बिजाई के उपरांत (पहली कटाई से पूर्व) हाथ से निराई–गुड़ाई की जाना आवश्यक होगा। अगली कटाइयों में भी (प्रत्येक कटाई के उपरांत) हाथ से गुड़ाई की जाना लाभदायक होगा। आगे के लिए ज्यादा खरपतवार नहीं होते तथा यदि हो भी तो उन्हें हाथ से ही निकाला जा सकता है। खरपतवार के नियंत्रण हेतु फसल की बिजाई से पूर्व प्रति एकड़ 0.5 किग्रा0 2–4 डी, को जमीन में डाला जाना भी खरपतवार के नियंत्रण हेतु प्रभावी हो सकता है।

2.1.12 लेमनग्रास की फसल में होने वाले प्रमुख रोग तथा इसकी कीट–पतंगों से रक्षा

लेमनग्रास की फसल को ज्यादा रोग नहीं होते तथा यह कीट–पतंगों से भी अपेक्षाकृत ज्यादा सुरक्षित रहती है, फिर भी इसकी फसल को निम्नलिखित बीमारियों/कीटों पतंगों से सुरक्षा की जाना आवश्यक होगा–

1. दीमक

जिन क्षेत्रों में सिंचाई की कम व्यवस्था होती है वहाँ दीमक का प्रकोप प्रायः हो सकता है, जिससे पौधे सूख सकते हैं। दीमक से सुरक्षा के लिए बिजाई से पूर्व उपरोक्तानुसार खेत में क्लोरपाइरीफास पाउडर डाला जाना उपयुक्त रहेगा। इसके अतिरिक्त यदि खेत में नीम की खली पीसकर डाली जाए तो वह भी पौधों को दीमक के प्रकोप से मुक्त रख सकती है। बायोनीमा 15 किग्रा. प्रति एकड़ की मात्रा भी डाली जा सकती है।

2. चूहों का प्रकोप

चूहों द्वारा भी कई बार इस फसल को नुकसान पहुँचाया जाता है। चूहे इसकी नाजुक पत्तियों तथा शिखाओं को काट लेते हैं जिससे इसकी पत्तियों का काफी नुकसान हो सकता है। चूहों से निपटने के लिए किसी भी चूहे मार दवा का प्रयोग किया जा सकता है।

3. शूट फ्लाई

शूट फ्लाई का लेमनग्रास की फसल पर प्रभाव प्रायः दक्षिण भारतीय राज्यों में देखा जाता है। इस कीट की सुण्डी पौधे के तने के भीतर घुसकर उसे काटकर खाती है। इससे पौधों को उचित मात्रा में भोजन नहीं मिल पाता तथा पौधों की बढ़वार रुक जाती है। प्रायः पौधे में 5–6 पत्तियाँ आने पर अथवा नये पौधे के रोपण के 5–6 सप्ताह के बाद इसका प्रकोप ज्यादा होते देखा गया है। इस कीट से पौधे की सुरक्षा हेतु डाईमेथोएट 30 – ई0सी0 का 100 से 150 मिली0 लीटर प्रयोग अथवा फोरेट 10–जी0 का 4 से 5 किलोग्राम अथवा कार्बोफ्यूरॉन 3 – जी0 का 4 से 5 किलोग्राम प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करने से फसल की इस बीमारी से सुरक्षा की जा सकती है।

4. वाइट फ्लाई

यह कीट लेमनग्रास के पौधों को प्रायः फरवरी से मई तक के महीनों में ज्यादा नुकसान पहुँचाता है। ये कीट प्रायः झुण्ड में रहते हैं तथा लेमनग्रास की पत्तियों के नीचे अत्यधिक मात्रा में रस चूस कर फसल की वृद्धि को रोकते है। इस कीट से फसल की सुरक्षा करने के लिए फॉस्फोमिडान अथवा डाइमेथोएट के तैलीय कीटनाशक का 200 से 250 मिली लीटर प्रति एकड़ की दर से पानी में घोल बनाकर छिड़काव किया जाना चाहिए।

2.1.13 फसल की कटाई

प्रथम बिजाई के लगभग 100 दिनों के बाद यह फसल प्रथम कटाई के लिए तैयार हो जाती है। इस समय फसल को भूमि की सतह से 10 से 15 सेंटीमीटर ऊपर (जहाँ से पत्ते शुरू होते हैं) से काटा जाना चाहिए। कटाई के उपरांत फसल एकदम पुनः बढ़ने लगती है तथा अगले 60 से 90 दिनों में पुनः कटाई के लिए तैयार हो जाती है। इस प्रकार प्रत्येक 60–70 दिन के अंतराल पर लेमनग्रास की आगामी कटाइयाँ ले ली जाती हैं। इस प्रकार एक बार फसल लगा देने के उपरांत कम से कम आगामी पाँच सालों तक यह क्रम चलता रहता है। लेमनग्रास की प्रतिवर्ष ली जा सकने वाली कटाइयों की संख्या यूँ तो भूमि की उर्वरता, देखरेख तथा पानी की उपलब्धता आदि पर निर्भर करती हैं, फिर भी परिस्थितियाँ अनुकूल होने की स्थिति में वर्ष में प्रायः 4 से 5 तक कटाइयाँ ली जा सकती हैं, जबकि यदि भूमि ज्यादा उपजाऊ न हो तथा पानी भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हो तो वर्ष में अधिकतम तीन तक कटाइयाँ ही ली जा सकेंगी। प्रायः लेमनग्रास के पौधों का जुट्टा निरंतर बढ़ता जाता है (इसका फैलाव होता जाता है) जिससे आगामी कटाइयों में फसल से मिलने वाली हर्ब में निरंतर वृद्धि होती जाती है। इस प्रकार एक बार लगा देने पर यह फसल पाँच साल तक उत्पादन निरंतर देती रहती है तथा इन पाँच वर्षों में इसकी प्रतिवर्ष तीन से पाँच तक कटाइयाँ ली जा सकती है।

2.1.14 पत्तियों से तेल निकालना :

लेमनग्रास की पत्तियों से तेल निकालने के लिए इसकी पत्तियाँ (शाक) का आसवन किया जाता है। इस कार्य हेतु वाष्प आसवन अथवा जल आसवन विधि का उपयोग किया जाता है। प्रायः फसल काटने के उपरांत

उसे कुछ समय तक मुरझाने हेतु खेत में ही अथवा किसी छायादार स्थान पर रख दिया जाता है तथा तदुपरांत ही उसका आसवन किया जाता है। यद्यपि वर्तमान में चल रही प्रक्रियाओं में आसवन हेतु पूरे की पूरी घास आसवन टैंक में डाल दी जाती है, परन्तु यदि इसे छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर आसवन हेतु डाला जाए तो इससे प्राप्त होने वाले तेल की मात्रा बढ़ सकती है। आसवन की प्रक्रिया ढ़ाई से तीन घंटों में पूरी हो जाती है।

2.1.15 फसल से प्राप्त होने वाले तेल की मात्रा :

यद्यपि लेमनग्रास की फसल से उत्पादित होने वाले तेल की मात्रा भूमि की उर्वरा शक्ति, क्षेत्र की जलवायु, खेती की देखरेख, लेमनग्रास की लगाई गई प्रजाति तथा घास काटने के समय पर ज्यादा निर्भर करती है परन्तु मध्यप्रदेश में हो रही लेमनग्रास की खेती के अनुभवों के आधार पर पर यह कहा जा सकता है कि प्रथम वर्ष में लेमनग्रास की फसल से वर्ष भर में चार कटाइयाँ में औसतन 100 किलोग्राम तेल प्राप्त किया जा सकता है, जोकि आगामी वर्षो में बढ़ता जाता है। प्रायः पत्तियों के अनुपात में 0.5 प्रतिशत से एक प्रतिशत तक तेल की मात्रा प्राप्त होती है।

2.1.16 लेमनग्रास की विभिन्न प्रजातियाँ/किस्में :

नींबू घास की अनेकों प्रजातियाँ/किस्में विभिन्न संस्थाओं द्वारा विकसित की गई हैं, जिनमें प्रमुख हैं – प्रगति, प्रमाण, कावेरी, कृष्णा, आर0एल0एल0 – 16, जी0आर0एल0–1 आदि। मध्यप्रदेश के संदर्भ में लेमनग्रास की जो प्रजाति सर्वाधिक सफल रही है व है सी0के0पी0–25 मध्यप्रदेश के संदर्भ में यह प्रजाति न केवल अपेक्षाकृत ज्यादा आसानी से उगने तथा फैलने वाली सिद्ध हुई है बल्कि यहाँ पर इसकी बढ़वार भी आश्चर्यजनक रूप से अधिक (छः फुट तक) हुई है तथा इससे उत्पादित होने वाले तेल की मात्रा भी अपेक्षाकृत ज्यादा (1 प्रतिशत तक) रही है। अतः यह कहा जा सकता है कि मध्यप्रदेश की जलवायु के अनुसार लेमनग्रास की सी0के0पी0–25 प्रजाति सर्वाधिक उपयुक्त है।

2.1.17 लेमनग्रास की खेती से प्राप्तियाँ :

प्रायः देखा जा सकता है कि लेमनग्रास की फसल से प्रतिवर्ष प्रति एकड़ औसतन 100 किलोग्राम तेल प्राप्त किया जा सकता है, जिसका वर्तमान बिक्री मूल्य यदि 400/– रुपये प्रति किलोग्राम माना जाए (वैसे वर्तमान में

इसकी बिक्री दर 450 से 475 रु0 प्रति किग्रा0 है) तो इससे प्रथम वर्ष में 40,000/– रुपये की प्राप्तियाँ होंगी जो कि आगामी वर्षो में बढ़ती जाएंगी। फसल पर होने वाला मुख्य खर्च–स्लिप की लागत, खेत की तैयारी, खाद, निराई–गुड़ाई तथा फसल की कटाई से संबंधित होता है जिनमें से स्लिप्स की लागत तथा खेत की तैयारी से संबंधित खर्च केवल प्रथम वर्ष में ही होते हैं तथा आगामी वर्षो में घटकर लगभग 10,000/– रु0 रह जाती है। इस प्रकार इस फसल से प्रथम वर्ष में लगभग 20,000/– रुपये का लाभ प्राप्त होता है। जबकि आगामी वर्षो में लाभ की मात्रा बढ़कर 45 से 50,000/– रुपये प्रति एकड़ तक हो जाती है। तेल के साथ–साथ इस फसल से स्लिप्स द्वारा अतिरिक्त आय हो सकती है। विशेष रुप से इस फसल से जुड़ी अनेकों सुविधाओं जैसे इसे एक बार लगा कर पाँच साल तक इसकी फसल ली जा सकना, इस फसल में ज्यादा खरपतवार न होना, इसे पशुओं द्वारा कोई विशेष नुकसान नहीं पहुँचा सकना तथा इसके काफी अच्छी बाजार एवं अच्छे दाम मिलने के कारण लेमनग्रास की खेती करना काफी लाभकारी व्यवसाय हो सकता है।

2.1.18 लेमनग्रास की खेती हेतु प्लांटिंग मेटेरियल की प्राप्ति :

वर्तमान में मध्यप्रदेश के विभिन्न भागों में लगभग 50 किसानों द्वारा लेमनग्रास की खेती प्रारंभ की जा चुकी है जिन्हें लेमनग्रास की स्लिप्स प्राप्त करने हेतु संपर्क किया जा सकता है। बायोवेद शोध संस्थान, इलाहाबाद से भी सम्पर्क किया जा सकता है।

2.1.19 लेमनग्रास के ऑयल की बिक्री हेतु कहाँ संपर्क करें ?

वर्तमान में लेमनग्रास के ऑयल की बिक्री में कोई परेशानी नहीं है। इस क्षेत्र में कार्य कर रहे विभिन्न डीलरों/खरीददारों की जानकारी सेडमैप द्वारा प्रकाशित पुस्तक ''लघु विपणन निर्देशिका'' से प्राप्त की जा सकती है। उ. प्र. में ऑयल की बिक्री हेतु बायोवेद शोध संस्थान 103/42, मो.ला. नेहरू रोड, इलाहाबाद से सम्पर्क किया जा सकता है।

1.2.10 लेमनग्रास की खेती पर प्रति एकड़ आने वाली अनुमानित लागत तथा आय का विवरण

(क) लागत

क्र0सं0	खर्च की मद	प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष	तृतीय वर्ष	चतुर्थ वर्ष	पाँचवां वर्ष
1.	भूमि की तैयारी पर व्यय (दो जुताइयों पर व्यय)	1,000	–	–	–	–
2.	बीज/प्लांटिंग मेटेरियल की लागत (15,000 स्लिप्स)	10,000	–	–	–	–
3.	खाद तथा कीटनाशकों पर व्यय (5 ट्राली गोबर की खाद तथा 15 किग्रा0 बायोनीमा)	2,500	2,500	2,500	2,500	2,500
4.	निराई, गुड़ाई तथा पानी आदि देने की लागत	1,000	5,00	5,00	5,00	5,00
5.	प्रक्रियाकरण पर व्यय (50 रु0 प्रति किग्रा0 तेल हेतु)	5,000	7,500	7,500	7,500	7,500
	कुल लागत	**19,500**	**10,500**	**10,500**	**10,500**	**10,500**
(ख)	**कुल प्राप्तियाँ** (400 रु0 प्रति किग्रा0 की दर से)	**40,000** (100 किग्रा0 तेल)	**60,000** (150 किग्रा0 तेल)	**60,000** (150 किग्रा0 तेल)	**60,000** (150 किग्रा0 तेल)	**60,000** (150 किग्रा0 तेल)
(ग)	**लाभ**	**20,500**	**49,500**	**49,500**	**49,500**	**49,500**

❖❖❖

इकाई– 2

लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. लेमनग्रास का उत्पत्ति स्थल किसे माना जाता है?
2. लेमनग्रास की प्रमुख किस्में कौन–कौन सी हैं?
3. लेमनग्रास की खेती के लिए उपयुक्त जलवायु कौन सी है?
4. लेमनग्रास की बिजाई के लिए किसका प्रयोग किया जाता है?
5. लेमनग्रास की बुवाई का उपयुक्त समय कौन सा है?

खाली स्थान भरो :

1. लेमनग्रास का वैज्ञानिक नाम .....है।
2. प्रायः एक एकड़ के क्षेत्र में लगभग.....स्लिप्स की आवश्यकता पड़ती है।
3. लेमनग्रास की पत्तियों से तेल निकालने के लिए..... .....विधि का प्रयोग किया जाता है।
4. पत्तियों के अनुपात में.....प्रतिशत से.....प्रतिशत तक तेल की मात्रा प्राप्त होती है।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न :

1. लेमनग्रास की रासायनिक संरचना लिखें। इसके औषधीय उपयोग के बारे में विस्तार से बताइये।
2. लेमनग्रास की कृषि तकनीकी का उल्लेख करें।
3. लेमनग्रास की आर्थिकी का वर्णन करें।

❖❖

इकाई– 3

3.1 डीजल का विकल्प प्रदान करने में सक्षम एक उपयोगी वृक्ष : **जैट्रोफा अथवा रत्नजोत**

3.1.1 भूमिका

3.1.2 उद्देश्य

3.1.3 इतिहास बायो डीजल का

3.1.4 जैट्रोफा तथा रत्नजोत

3.1.5 जैट्रोफा के औषधीय एवं व्यवसायिक उपयोग

3.1.6 एक सौन्दर्य वर्धक पौधे के रूप में

3.1.7 औषधीय कार्यों हेतु उपयोग

3.1.8 विभिन्न औद्योगिक कार्यों हेतु जैट्रोफा का उपयोग

3.1.9 कीटनाशक के रूप में जैट्रोफा के उपयोग

3.1.10 खाद्य पदार्थ के रूप में

3.1.11 भूमि सुधार हेतु जैट्रोफा का उपयोग

3.1.12 रंगाई कार्य हेतु जैट्रोफा का उपयोग

3.1.13 फेन्सिंग (बाड़) कार्य हेतु जेट्रोफा का उपयोग

3.1.14 डीजल के विकल्प के रूप में

3.1.15 क्या जैट्रोफा ऑयल आज की परिस्थितियों में डीजल का सही विकल्प है?

3.1.16 केरोसिन के विकल्प के रूप में

3.1.17 जैट्रोफा की खेती की विधि

3.1.18 उपयुक्त जलवायु

3.1.19 उपयुक्त मिट्टी

3.1.20 जैट्रोफा की बिजाई की विधि

3.1.21 खेत की रोपाई

3.1.22 जैट्रोफा की खेती से सम्बन्धित की जाने वाली विभिन्न कृषि क्रियाएं

3.1.23 पौधों की ट्रिमिंग अथवा प्रूनिंग/छँटाई

3.1.24 खाद की व्यवस्था

3.1.25 जैट्रोफा के पौधों का फलन
3.1.26 जैट्रोफा के पौधों से उत्पादन
3.1.27 जैट्रोफा की फसल के साथ ली जा सकने वाली अन्य फसलें अथवा अंर्तवर्तीय फसलें
3.1.28 जैट्रोफा की खेती के संदर्भ में प्रमुख निष्कर्ष
3.1.29 आय–व्यय का विवरण

इकाई : 3

3.1 डीज़ल का विकल्प प्रदान करने में सक्षम एक उपयोगी वृक्ष

जैट्रोफा अथवा रत्नजोत

(*Jatropha curcas*)

3.1.1 भूमिका

जैट्रोफा अथवा रत्नजोत मध्यम आकार के उन प्रमुख पौधों (वृक्षों) में है जो वर्तमान में सर्वाधिक ''लाइमलाइट'' में हैं हालांकि यह विश्व के प्राचीनतम् पौधों में से एक है तथा बेलेन (पेरू) में पाए गए इसके अवशेष इसको 7 करोड़ वर्ष पुराना पौधा होना दर्शाते हैं परन्तु हाल ही के वर्षों में इसकी उपयोगिता डीज़ल के विकल्प के रूप में प्रचारित होने के कारण यह अनाथ किस्म का बेकार माना जाने वाला पौधा रातों रात कृषि वैज्ञानिकों, ट्रोसपोर्टरों, बंजर भूमि विकास के विशेषज्ञों, पर्यावरणविदों तथा बीज प्रदायकों का चहेता बन गया है।

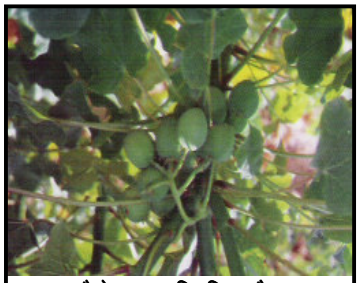

जैट्रोफा का विकसित पौधा

भारत के तीव्र विकास की गूंज आज संपूर्ण विश्व में सुनाई दे रही है। सन् 2020 तक विकसित राष्ट्र बनने की राह पर हमारे कदम बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। परन्तु इस विकास को गति देने वाले पेट्रोलियम पदार्थों की उपलबधता का आयात पर निर्भर होना देश के समक्ष एक विकट चुनौती है। भारत के तीव्र आर्थिक विकास की राह में यह एक बड़ी बाधा है। पेट्रोलियम पदार्थों के बढ़ते उपयोग के कारण पर्यावरण प्रदूषण की समस्या भी गहराती जा रही है। ऊर्जा के इस चिंताजनक परिदृश्य में भारत की अनमोल वानस्पतिक संपदा एक बार फिर संजीवनी बनकर उभरी हैं जैट्रोफा नामक एक जंगली पौधे ने ऊर्जा के संकट से निपटने की सामर्थ्य दिखाई है। इसके बीजों से मिलने वाले तेल को एक सरल उपचार के बाद डीजल के स्थान पर

उपयोग में लाया जा सकता है। बायो–डीजल के नाम से विख्यात जैट्रोफा का तेल पर्यावरण–हितैषी भी है, क्योंकि इसमें सल्फर नहीं होता।

आर्थिक दृष्टिकोण से देखें तो एक हेक्टेयर में जैट्रोफा के ढाई हजार पौधे लगाए जा सकते हैं, जिन्हें लगाने और एक वर्ष तक देखभाल का खर्च लगभग 40 हजार रुपये प्रति हेक्टेयर बैठता है। बायो–डीजल प्राप्त करने के लिए बीजों को इकट्ठा करने तथा इनसे तेल निकालने तथा तेल को बायो–डीजल के रूप में बदलने का संयंत्र लगाना होगा। इसलिए जैट्रोफा की खेती को सरकार द्वारा आर्थिक अनुदान तथा आसान शर्तों पर ऋण देकर प्रोत्साहित करने की योजना है। जैट्रोफा के बीजों से तेल निकालने के बाद बची खली का जैविक खाद के रूप में अच्छा उपयोग है, क्योंकि इसमें फसलों की बढ़वार के लिए आवश्यक नाइट्रोजन, फॉसफोरस तथा पोटाश तत्व मौजूद होते हैं। जैट्रोफा की खली का उपयोग कर महंगे व प्रदूषणकारी रासायनिक उर्वरकों के इस्तेमाल में कटौती की जा सकती है। जैट्रोफा की खली बायो–डीजल के साथ मिलने वाला बोनस या अतिरिक्त लाभ है। जैट्रोफा की व्यावसायिक खेती से रोजगार के अभाव से त्रस्त ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अतिरिक्त अवसरों के सृजन की अपार संभावनाएं हैं। खेती के कामकाज से लेकर बीज इकट्ठा करने, तेल निकालने तथा बायो–डीजल संयंत्र में रोजगार के अवसर उत्पन्न होंगे। बायो–डीजल के लिए जैट्रोफा की खेती से एक करोड़ रोजगार पैदा होने की संभावना बताई जा रही है।

जैट्रोफा से बायो–डीजल बनाने का ग्रामीण व्यवसाय देश में ऊर्जा–क्रांति के दरवाजे पर दस्तक दे रहा है। साथ ही जैट्रोफा पर्यावरण सुधार और सामाजिक–आर्थिक उद्धार का सशक्त माध्यम बनकर भी उभरा है। जैट्रोफा को गांव–गांव में बड़े पैमाने पर यथाशीघ्र अपनाने की आवश्यकता है। हमें इस सुनहरे अवसर का लाभ उठाने में देर नहीं करनी चाहिए।

विगत तीन दशकों से विश्व में आये तेल के संकट को देखते हुए वैज्ञानिकों द्वारा डीजल के विकल्प की तलाश की जा रही है। पेट्रोलियम उत्पादों के अंधाधुंध उपयोग से विश्व के समक्ष डीजल की इस चिंता को और बढ़ा दिया है। भारत सरकार भी इस ओर चिंतित है तथा दसवी पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत डीजल के विकल्प के रूप में जेट्रोफा नामक

पौधे के तेल से बायोडीजल बनाने के प्रयोग किए जा रहे हैं। जोकि व्यवहारिक तौर पर सफल साबित हुआ है।

3.1.2 उद्देश्य : जैट्रोफा की खेती से संबंधित सम्पूर्ण वैज्ञानिक जानकारियाँ उपलबध कराना।

3.1.3 इतिहास बायो–डीजल का

दुनिया में सबसे पहले बायो–डीजल 1894 में रूडोल्फ डीजल ने (ये डीजल इंजन के जन्मदाता भी थे) बनाया था। लेकिन, उस समय मूंगफली के तेल से बना बायो–डीजल पेट्रोलियम पदार्थों की तुलना में काफी महंगा था। इसलिए इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। साथ ही, 1894 से लेकर करीब सौ सालों तक सिर्फ पेट्रोलियम पदार्थों पर ही शोध होता रहा, बायो–डीजल की ओर ध्यान नहीं दिया गया। लेकिन खत्म होते पेट्रोलियम पदार्थ व अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में उछाल खाती तेल की कीमतों और प्रदूषण की काली छाया ने मानव को पेट्रोलियम पदार्थों का विकल्प ढूंढने के लिए मजबूर कर दिया है। इसी का नतीजा है कि बहुत सारे वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों पर काम किया जा रहा है। इन्हीं में से एक बायो–डीजल है। शायद इसीलिए 1912 में रूडोल्फ डीजल ने कहा था कि वनस्पति तेल का उपयोग ईंधन के रूप में आज कम महत्वपूर्ण है, वही वनस्पति तेल आने वाले समय में उतना ही महत्वपूर्ण होगा जितना कि आज पेट्रोलियम पदार्थ हैं। अपने देश के संदर्भ में इतना ही कहना काफी होगा कि पेट्रोलियम पदार्थ हमारे देश की अर्थव्यवस्था को ठीक उसी तरह प्रभावित करता है जैसे दिल की धड़कन को श्वास प्रभावित करती है। इसका अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि देश के पेट्रोलियम पदार्थों का दो तिहाई हिस्सा विदेशों से आयात किया जाता है, जिसकी कीमत हमें विदेशी मुद्राओं से चुकानी पड़ती है। पिछले साल 90,000 करोड़ रुपये का तेल आयात किया गया था। अगर इनमें एक छोटा सा हिस्सा भी कम कर दिया जाए तो देश को बहुत सारी विदेशी मुद्रा की बचत हो सकती है। इस दशा में अभी काफी कार्य करना बाकी है। साथ ही, यह विकल्प अगर जैविक हो तो अधिक बेहतर होगा क्योंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है यहां की अर्थव्यवस्था कृषि से सीधे तौर पर जुड़ी हुई है। वैसे तो बायो–डीजल के ऊपर देश के विभिन्न

संस्थानों में प्रयोग व शोध चल रहे हैं और इसमें सफलता भी मिली है। साथ ही दिल्ली कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग में बायोडीजल पर सफल प्रयोग किया गया है।

3.1.4 जैट्रोफा तथा रत्नजोत ?

हालांकि जैट्रोफा को रत्नजोत के नाम से भी जाना जाता है परन्तु इसे रत्नजोत कहना तकनीकी रूप से उपयुक्त नहीं है। जहां जैट्रोफा एक मध्यम आकार का पौधा (वृक्ष) होता है वहीं रत्नजोत एक प्रकन्दी शाकीय वनस्पति है जिसका वनस्पतिक नाम अर्नेबिया बेन्थामाई (Arnebia benthamii) है तथा जिसे लालजड़ी भी कहा जाता है। इसका (लालजड़ी का) फूल 6 से 8 इंच लम्बा होता है तथा इसका उपयोग तेलों को लाल रंग प्रदान करने के साथ–साथ– मानसिक अवसादों तथा गले की व्याधियों के निराकरण हेतु किया जाता है। यह भारत के शीतोष्ण प्रदेशों में 3000 से 3600 मीटर तक की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। अपने व्यवहार तथा प्रकृति में भी जैट्रोफा से पूर्णतया भिन्न है। अतः बोलचाल की भाषा में तो जैट्रोफा से पूर्णतया भिन्न हैं अतः बोलचाल की भाषा में तो जैट्रोफा को रत्नजोत कहा जा सकता है परन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से इसे रत्नजोत कहना उपयुक्त नहीं है।

जैट्रोफा के पौधे लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष के गर्म तथा आर्द्र क्षेत्रों में देखे जा सकते हैं। अपने आप को सभी प्रकार के वातावरण में ढालने की क्षमता रखने, सभी प्रकार की मिट्टियों में पैदा होने तथा किसी प्रकार की सिंचाई के बिना अच्छी प्रकार फलने–फूलने वाला यह पौधा दक्षिणी अमेरिका तथा अफ्रीका का मूल पौधा माना जाता है जिसे पुर्तगाली व्यापारियों ने विश्व भर में फैलाया। वर्तमान में यह विश्व के लगभग सभी कटिबन्धीय तथा उष्ण कटिबन्धीय देशों में बहुतायत में पाया जाता है।

3.1.5 जैट्रोफा के औषधीय एवं व्यवसायिक उपयोग

रत्नजोत को इसका वनस्पतिक नाम ''जैट्रोफा कर्कस'' सुप्रसिद्ध वनस्पतिक विशेषज्ञ श्री कार्ल वॉन लिन्न द्वारा वर्ष 1753 में दिया गया था। वस्तुतः ग्रीक भाषा में जैट्रोफा शब्द का अर्थ होता है ''डॉक्टर'' तथा ट्रोफे शब्द का अर्थ होता है ''पोषण'' जो स्वतः ही इसके औषधीय उपयोगों का द्योतक है। विभिन्न कार्यों हेतु इसका उपयोग 250 वर्षों से भी अधिक समय

से किया जाता रहा है। तथा समय के साथ–साथ विभिन्न अनुसंधानों के माध्यम से इसके नए–नए औषधीय एवं व्यवसायिक उपयोगों की जानकारी तथा उन उपयोगों की व्यवहारिकता का पता चलता जा रहा है। वर्तमान में जिन प्रमुख कार्यों हेतु इसका उपयोग किया जा रहा है, वे निम्नानुसार हैं–

3.1.6 एक सौन्दर्य वर्धक (आर्नामेन्टल) पौधे के रूप में

जैट्रोफा एक शीघ्र बढ़ने वाला पौधा होता है जिसका उपयोग बंजर भूमियों को हरा–भरा करने हेतु बखूबी किया जा सकता है। इसकी शीघ्र बढ़त के फलस्वरूप अन्य अनोपयोगी पौधे जैसे गाजर घास आदि पनप नहीं पाते। अतः शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में खाली स्थानों पर हरियाली लाने हेतु यह काफी उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

3.1.7 औषधीय कार्यों हेतु उपयोग

जैट्रोफा के बीजों में ''जैट्रोफिन'' नामक एल्केलायड पाया जाता है। जिसमें कैंसर रोधी गुण पाए जाते हैं। इसके तेल में विरेचक गुण पाए जाते हैं जिससे इसका उपयोग पेट साफ करने हेतु किया जाता है। इस संदर्भ में इसके तेल में अरण्डी के तेल की तुलना में कम विस्कॉसिटी होती है। विभिन्न चर्म रोगों तथा जोड़ों के दर्द की स्थिति में इसके तेल की बाहरी मालिश की जाती है। ड्रॉप्सी, साइटिका तथा पक्षाघात के निवारण में भी इसकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। ग्रामीण क्षेत्रों में पशुओं के घावों के उपचार हेतु इसके तेल का उपयोग किया जाता है जबकि इसकी नर्म मुलायम डालियों का उपयोग दातुन के रूप में दांत साफ करने हेतु किया जाता है। जावा द्वीप समूह में इसके तेल का उपयोग केशवर्धन हेतु एक टॉनिक के रूप में किया जाता है। इसके रस से दांतों के दर्द से मुक्ति मिलती है तथा मसूढ़ों को सुदृढ़ बनाता है। इसके पत्तों के रस का उपयोग बवासीर के निदान हेतु बाह्य रूप से किया जाता है। भारत के कोंकण क्षेत्र में इसका उपयोग अपच तथा डायरिया के निदान हेतु किया जाता है जिसके लिए इसकी छाल को बटर मिल्क तथा हींग में पीस कर उसका पेस्ट बनाकर दिया जाता है। इसी प्रकार इसकी छाल के काढ़े का उपयोग जोड़ों के दर्द तथा कुष्ठ रोग के उपचार हेतु भी किया जाताहै। भारतवर्ष के ट्रावनकोर क्षेत्र में इसके बीजों को पीस कर तथा भून कर उन्हें मौलेसिस में मिलाकर पेट दर्द तथा जहर के

उपचार हेतु प्रयुक्त किया जाता है।

3.1.8 विभिन्न औद्योगिक कार्यों हेतु जैट्रोफा का उपयोग

जैट्रोफा के तेल की ''सैपोनिफिकेशन वेल्यू'' काफी अधिक होती है जिसके कारण भारत वर्ष के साथ–साथ अन्य देशों में भी इसका काफी मात्रा में उपयोग साबुन उद्योग में किया जाता है। भारतीय सौन्दर्य प्रसाधन उद्योग की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अभी भी इसका आयात होता है। चीन में इसका उपयोग वार्निश बनाने हेतु किया जाता है जिसके लिए इसके तेल को आयरन आक्साइड के साथ मिलाकर उबाला जाता है। देहातों में इसका उपयोग दीपक बत्ती के रूप में किया जाता है। इंग्लैण्ड में इसका उपयोग ऊन की स्पिनिंग हेतु किया जाता है। इसका उपयोग हाईड्रोलिक तेल के रूप में भी किया जा सकता है तथा इसकी खली में पाया जाने वाला प्रोटीन प्लास्टिक तथा सिन्थेटिक फाइबर्स के लिए कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

3.1.9 कीटनाशक के रूप में जैट्रोफा के उपयोग

जैट्रोफा के बीजों में कीटनाशक गुण पाए जाते हैं जिसकी वजह से विभिन्न देशों में इसका कीटनाशक के रूप में उपयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ ब्राजील में इन्हें पाम आयल के साथ में पीसकर इनका उपयोग चूहेमार दवा के रूप में किया जाता है। इसके पत्तों में भी कीटनाशक गुण होते हैं। घाना में इसके पत्तों का धुंआ खटमलों को भगाने हेतु किया जाता है तथा फिलिपीन्स में इसके पौधे के रस का उपयोग मछलियों को सुन्न करने हेतु किया जाता है।

3.1.10 खाद्य पदार्थ के रूप में

जावा तथा मलेशिया में जैट्रोफा के पत्तों को उबालने के उपरान्त इनका उपयोग खाने हेतु किया जाता है। आसाम में इसके पत्ते टसर सिल्क के कीड़ों को भोज्य पदार्थ के रूप में खिलाए जाते हैं। इसकी खली में प्रोटीन की काफी अधिक मात्रा विद्यमान होती है। जिससे इसका उपयोग उच्च प्रोटीनयुक्त पशु आहार के रूप में किया जा सकता है। परन्तु क्योंकि इसमें कुछ जहरीले तत्व होते हैं अतः अभी इसका उपयोग पशु आहार के रूप में नहीं किया जा रहा। शोध के माध्यम से इसके जहरीले तत्वों को

अलग करने की तकनीक विकसित की जा सकती है तथा यदि एक बार यह तकनीक विकसित हो गई तो जैट्रोफा की खली पशुधन के लिए एक उच्च गुणवत्ता का आहार सिद्ध होगी।

इसी प्रकार यूं तो इसका तेल जिसमें 21 प्रतिशत सैचुरेटेड फैटी एसिड्स तथा 79 प्रतिशत अनसेचुरेटेड फैटी एसिड्स रहते हैं, का उपयोग मानव द्वारा खाद्य तेल के रूप में किया जा सकता है परन्तु एक तो इसके तेल में विरेचक गुण पाए जाते हैं तथा दूसरे इसमें कुछ जहरीले पदार्थ भी रहते हैं अतः अभी इसका इसके वर्तमान रूप में मानव मात्र द्वारा उपयोग किया जाना उपयुक्त नहीं है हालांकि उपयुक्त शोध तथा तकनीकी के माध्यम से इसके अखाद्य तेल को खाद्य तेल में परिवर्तित किया जा सकता है जो विकासशील देशों के लिए एक वरदान का काम करेगा। ऐसे प्रमाण हैं कि अभी भी इसकी मिलावट मूंगफली के तेल में की जाती है जिसका अर्थ है कि यदि अच्छी तकनीक अपना करके इसके जहरीले तथा विरेचक गुणों को अलग किया जा सके तो इसका उपयोग एक खाद्य तेल के रूप में किया जा सकता है।

3.1.11 भूमि सुधार हेतु जैट्रोफा का उपयोग

जैट्रोफा की खली में नाइट्रोजन, फासफोरस तथा पोटैशियम की काफी अधिक मात्राएं होती हैं जिनकी वजह से इसका उपयोग जैविक खाद के रूप में किया जा सकता है। वर्तमान में इसके कोमल पत्तों तथा डालियों का उपयोग नारियल की प्लांटेशन में खाद के रूप में किया जाता है। जैट्रोफा के पत्तों से काफी अधिक मात्रा में ''आर्गेनिक मैटर'' तैयार होता है, जिससे भूमि की सूक्ष्म जैव गतिविधियों (माइक्रोबिएल एक्टिविटी) में बढ़ोत्तरी होती है। ये केंचुओं के विकास के लिए भी अनुकूल वातावरण प्रदान करता है जिससे भूमि तथा इकालॉजी के सुधार में इसका काफी योगदान हो सकता है।

3.1.12 रंगाई कार्य हेतु जैट्रोफा का उपयोग

जैट्रोफा की छाल से गहरे नीले रंग की डाई का निर्माण होता है जिसे फिलीपीन्स में मछलियों के जालों की रंगाई हेतु प्रयुक्त किया जाता है।

इसी प्रकार सूती वस्त्रों को विभिन्न शेड प्रदान करने हेतु भी इसका उपयोग किया जाता है। इसके नर्म पत्तों तथा टहनियों से भी डाई का निर्माण किया जा सकता है। निः सन्देह इस क्षेत्र में संभावनाएं काफी हैं जिनकी व्यवसायिक उपयोगिता की दृष्टि से दोहन करने हेतु व्यापक शोध की आवश्यकता है।

3.1.13 फेन्सिंग (बाड़) कार्य हेतु जैट्रोफा का उपयोग

बगीचों अथवा खेतों की फेन्सिंग के रूप में जैट्रोफा का भारतवर्ष में उपयोग काफी पुराना है। क्योंकि यह तेजी से बढ़ता है अतः इसकी बाड़ भी जल्दी तैयार हो जाती है। इस प्रकार खेतों की पालतू पशुओं तथा जंगली 'जानवरों से सुरक्षा हेतु इसकी बाड़ काफी उपयोगी रहती है। भूक्षरण तथा भूमि के कटाव को रोकने हेतु भी इसकी बाड़ काफी उपयोगी रहती हैं पशुओं से सुरक्षा हेतु बाड़ के रूप में प्रयुक्त करने के साथ–साथ यह एक ''प्रभावी विन्डब्रेकर'' का कार्य भी करती है। राजस्थान के किन्हीं भागों में दूसरे पौधों अथवा फसलों की तेज हवाओं तथा लू से सुरक्षा हेतु इसका उपयोग चारदीवारी अथवा विंडब्रेकर के रूप में किया जा सकता है। औषधीय खेती के संदर्भ में अपनाई जाने वाली बहुस्तरीय कृषि व्यवस्था (मल्टी टीयर सिस्टम) जिसमें बड़े पौधे, मध्यम पौधे तथा लताओं को एक साथ लगाए जाने की व्यवस्था होती है, वहां किन्हीं लताओं जैसे केवांच करेला आदि के आरोहण हेतु इसका बखूबी उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार यह एक कम खर्चीला परन्तु स्थाई एवं उपयोगी फेन्स, विन्ड ब्रेकर तथा आरोहरण में सहायक पौधा है।

खेत में लगी जैट्रोफा की कलम

3.1.14 डीज़ल के विकल्प के रूप में

जैसा कि उपरोक्तानुसार वर्णित है वर्तमान में जिस प्रमुख उपयोग के संदर्भ में जैट्रोफा सर्वाधिक चर्चा में है, वह है इसका ''डीज़ल'' के रूप में उपयोग। निःसन्देह ऊर्जा के विभिन्न माध्यमों में से डीज़ल का एक प्रमुख माध्यम है जिसका उपयोग रेल, बस, टैम्पो, टैक्सी, जीप, ट्रैक्टर आदि से लेकर विभिन्न उपयोगों में तथा यहां तक कि स्वयं बिजली के उत्पादन हेतु (जैनरेटिंग सेट के संदर्भ में) भी किया जाता है। पेट्रोल तथा डीज़ल की कीमतों में जरा सी बढ़ोत्तरी का सामान्य उपभोक्ता पर क्या असर पड़ता है, इससे तो सभी परिचित हैं ही। इससे भी बड़ी विडंबना यह है कि डीज़ल की आपूर्ति हेतु हमें विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है जिससे और भी कई प्रकार के दबाव देश की अर्थव्यवस्था, राजनीति तथा यहां तक कि देश की प्रभुता पर भी पड़ते हैं। इस समस्या के एक उपयुक्त हल के रूप में उभर सकता है जैट्रोफा।

पिछले कुछ वर्षों में हुए अनुसंधानों एवं व्यवहारिक प्रयोगों के फलस्वरूप वैज्ञानिकों तथा नीति निर्धारकों को आशा की एक किरण जैट्रोफा में दिखती है तथा अभी तक यह पूर्णतया सिद्ध हो चुका है कि कुछ छोटे–मोटे परिवर्तनों के साथ जैट्रोफा के तेल का उपयोग डीज़ल के रूप में किया जा सकता है। जैट्रोफा के तेल की रासायनिक संरचना निम्नानुसार पाई गई है–

- एसिड वैल्यू = 38.2
- सैपोनिफिकेशन वेल्यू = 195.0
- विस्कॉसिटी = 31°C
- फैटी एसिड = 40.0
- पामिटिक एसिड = 14.2%
- स्टीयरिक एसिड = 6.9%
- ओलियिक एसिड = 43.1%
- लिनोलिक एसिड = 34.3%
- अन्य एसिड = 1.4%

जैट्रोफा के पौधे पर तैयार

जहां तक जैट्रोफा के तेल का डीज़ल के विकल्प के रूप में उपयोग

का प्रश्न है, तो इस संदर्भ में कई प्रयोग किए जा चुके हैं। ऐसा ही एक प्रयोग जिसमें एक यानमार इंजिन को डीजल तथा जैट्रोफा तेल, दोनों पर चलाकर देखा गया, के परिणाम निम्नानुसार पाए गए–

उपरोक्तानुसार देखा जा सकता है कि जैट्रोफा ऑयल का उपयोग भी उतना ही प्रभावी है जितना कि डीज़ल का उपयोग। इसके अतिरिक्त कुबोटा डीज़ल इंजन को जैट्रोफा ऑयल से 1000 घंटे तक चलाने पर भी सही परिणाम पाए गए। पर्यावरण की दृष्टि से भी जैट्रोफा ऑयल के उपयोग से किसी प्रकार की हानि होते नहीं पाई गई। 125 पी.पी.एम. पर जैट्रोफा ऑयल से इंजिन चलाने पर इंजिन की बाहर निकलने वाली फ्यूम्स में सल्फर डायक्साइड की उपस्थिति नहीं पाई गई। इस संदर्भ में डीज़ल ऑयल तथा जैट्रोफा ऑयल की तुलनात्मक विशिष्टियां निम्नानुसार हैं–

मानक विशिष्टियां	जैट्रोफा तेल	डीज़ल
स्पेसिफिक ग्रेविटी	0.9186	0.82 / 0.84
फ्लेश प्वाईंट	240 / 110^{0}C	50^{0}C
कार्बन अवशेष	0.64	0.15 से कम
सीनेट वेल्यू	51.0	50.0
डिस्टीलेशन प्वाइन्ट	295^{0}C	350^{0}C
किनेमेटिक विस्कासिटी	50.73 सी एस	2.7 सी एस
सल्फर का प्रतिशत	0.13%	1.2% से कम
कैलोरीफिक वेल्यू	0470के / कैलो / कि.ग्रा.	10170के / कैलो / कि.ग्रा.
पोलर प्वाइंट	8^{0}C	10^{0}C से कम
कलर	4.0	4 से कम

इस प्रकार विभिन्न परीक्षणों के परिणाम यह दर्शाते हैं कि जैट्रोफा के तेल में वे सभी वांछित भौतिक रासायनिक गुण पाए जाते हैं जिससे यह सामान्य डीज़ल के विकल्प के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। इंजिन चलाने हेतु अथवा डीज़ल के विकल्प के रूप में इसे प्रयुक्त करने हेतु इसके **इग्नीशन सिस्टम में कुछ छोटे–मोटे परिवर्तन** करने होंगे अथवा इसके संदर्भ में एक उपयुक्त रासायनिक प्रक्रिया (कैमीकल मिक्स) विकसित करनी

होगी क्योंकि इसका प्रारंभिक फ्लैश प्वाईंट अपेक्षाकृत ज्यादा (सामान्य डीजल के संदर्भ में यह 50^{0}C तथा जैट्रोफा के तेल के संदर्भ में 110^{0}C होता है) उच्च होता है। हालांकि इसके उच्च फलैश प्वाईंट के कुछ लाभ भी हैं क्योंकि इससे इसकी स्टोरेज तथा ट्रांसपोर्टेशन आसान हो जाती है, परन्तु इसकी वजह से इंजिन में प्रारंभ में स्टार्टिंग की समस्या (Starting trouble) आ सकती है। इसी प्रकार जैट्रोफा के तेल की विस्कासिटी ज्यादा ऊँची होने के कारण इंजिन की नोज़ल्स तथा पाइपों में जैट्रोफा के तेल का सही बहाव प्रभावित हो सकता है।

3.1.15 क्या जैट्रोफा आयल आज की परिस्थितियों में डीज़ल का सही विकल्प है?

आधुनिकतम विधियों का उपयोग करके जैट्रोफा के बीजों में लगभग 35% तेल प्राप्त होता है। सामान्य परिस्थितियों में जैट्रोफा के बीजों से औसतन 30% तक तेल प्राप्त हो सकता है। यदि जैट्रोफा के बीजों की वर्तमान बिक्री दर 10 रू. प्रति कि.ग्रा. मानी जाए तो एक लीटर जैट्रोफा ऑयल बनाने के लिए 3.4 कि.ग्रा. बीजों की जरूरत पड़ेगी। इसके साथ ही इसके निष्कर्षण (एक्सट्रैक्शन) पर लगभग 6 रू. प्रति कि.ग्रा. का खर्च भी आएगा। अर्थात् सामान्य परिस्थितियों में जैट्रोफा का एक लीटर तेल तैयार करने पर 40 रू. का व्यय होगा। ऐसे में जब डीज़ल 30–35 रू. प्रति लीटर की दर पर उपलब्ध है तो कोई क्यों 40 रू. प्रति लीटर वाला जैट्रोफा ऑयल प्रयुक्त करेगा। इसके अतिरिक्त डीज़ल इंजिन में जैट्रोफा का उपयोग करने पर इसे जैट्रोफा ऑयल के प्रयोग हेतु उपयुक्त बनाने के लिए इंजिन में कई प्रकार के सुधार अथवा परिवर्तन भी करने पड़ेंगे। वैसे भी जैसा कि उपरोक्तानुसार वर्णित है, डीजल की तुलना में जैट्रोफा तेल की मात्रा भी अधिक लगती है। अतः यदि सभी प्रकार के ''प्रचार'' को एक ओर रख कर देखें तो वर्तमान परिस्थितियों में जैट्रोफा तेल का उपयोग डीजल के रूप में करना आर्थिक रूप से लाभकारी प्रतीत होता है क्योंकि इसके तेल के उपयोग से पर्यावरण को कोई नुकसान नहीं होता है अब तो कई कम्पनियां जैट्रोफा के तेल से चलने वाली गाड़ियों का निर्माण करना प्रारम्भ किया है जिससे इसके तेल का उपयोग सीधे किया जा सकता है। **अतः तकनीकी, सैद्धान्तिक**

व्यवहारिक एवं आर्थिक दृष्टि से जेट्रोफा का तेल डीजल का विकल्प हो सकता है।

3.1.16 केरोसीन के विकल्प के रूप में

जैट्रोफा के तेल का उपयोग केरोसीन के विकल्प के रूप में (स्टोव जलाने, खाना पकाने, लाइटिंग आदि) हेतु भी किया जा सकता है। परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि यह खाने में केरोसीन तेल जैसी दुर्गंध नहीं छोड़ता, फलतः इसका स्टोव इत्यादि जलाने में उपयोग किया जा सकता है (हालांकि इसके लिए विशेष प्रकार के स्टोव बनाने पड़ेंगे)।

उपरोक्तानुसार देखा जा सकता है कि औषधीय, पर्यावरण तथा ऊर्जा के स्रोत के रूप में जेट्रोफा काफी उपयोगी पौधा है। हालांकि इसका उपयोग डीजल अथवा केरोसीन के रूप में लाभकारी है, परन्तु यदि इस पर पर्याप्त शोध किए जायें तथा ऊर्जा नीति के अंतर्गत इस पर कार्य किया जाए तो इससे अधिक अच्छे परिणाम आने की संभावनाएं हो सकती हैं। हां वर्तमान परिस्थिति में इसका सर्वाधिक उपयुक्त उपयोग पर्यावरण को हरा–भरा बनाने, फैन्सिंग हेतु प्रयुक्त करने नीलगाय या अन्य जानवरों से फसल की सुरक्षा आदि कार्यों में तथा एक विंड ब्रेकर के रूप में बखूबी हो सकता है। फेंन्सिंग हेतु प्रयुक्त करने पर एक तो यह बायो फेन्सिंग का काम करेगा जिससे महंगी फेन्सिंग पर होने वाले खर्च को कम किया जा सकता है। दूसरे इससे फलों का उत्पादन भी प्राप्त होगा जिससे अतिरिक्त लाभ प्राप्त हो सकता है।

3.1.17 जेट्रोफा की खेती की विधि

जेट्रोफा एक बहुवर्षीय पौधा (वृक्ष) है जिसे एक बार लगाने के उपरान्त यह 25 वर्ष तक अच्छी प्रकार विकास करता रहता है। इसके पौधों पर दूसरे वर्ष से फूल तथा फल आना प्रारंभ होते हैं तथा यदि इसकी सही हिफाजत तथा लगातार ट्रिमिंग करते रहें तो यह 25 वर्ष तक अच्छी उपज दे सकता है। इसकी खेती चारदीवारी हेतु भी की जा सकती है, जंगलों के खाली पड़े हिस्सों में भी, बंजर भूमि के विकास में भी तथा विधिवत खेतों में भी। अभी भी कई क्षेत्रों में विशेषकर राजस्थान के विभिन्न

भागों में इसकी खेती प्रारंभ हो चुकी है। इसकी खेती से संबंधित प्रमुख विवरण निम्नानुसार हैं–

3.1.18 उपयुक्त जलवायु

जैट्रोफा मुख्यतया गर्म जलवायु का पौधा है, अतः शुष्क तथा गर्म जलवायु में यह अच्छी प्रकार पनपता है। यूं तो यह सम्पूर्ण भारतवर्ष में हो सकता है परन्तु विशेषतया राजस्थान में तो इसे बड़े पैमाने पर खेतों में भी लगाया जा सकता है क्योंकि वहां बंजर भूमि भी उपलब्ध है (जो सामान्यतया अनउपजाऊ भी है तथा सस्ती भी)। राजस्थान के साथ–साथ हरियाणा, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात आदि राज्यों में भी इसे सफलतापूर्वक लगाया जा सकता है।

तेल निकालने तथा बिजाई के लिए तैयार जैट्रोफा के बीज

3.1.19 उपयुक्त मिट्टी

जैट्रोफा एक ऐसा पौधा है जो लगभग सभी प्रकार की मिट्टियों में पनप सकता है चाहे वे रेतीली मिट्टियां हों, हल्की मिट्टियां हों अथवा भारी मिट्टियां। क्योंकि इसे पानी की ज्यादा आवश्यकता नहीं होती अतः इसे लगभग सभी प्रकार की मिट्टियों में लगाया जा सकता है, विशेषतया रेतीली मिट्टियों में इसका कृषिकरण ज्यादा आसान भी होता है तथा लाभकारी भी। पूर्व में वन विभाग मध्यप्रदेश द्वारा भी इसका जंगलों में (फेन्सिंग आदि हेतु तथा भूमि का कटाव रोकने हेतु) काफी बड़ी मात्रा में रोपण किया गया था।

3.1.20 जैट्रोफा की बिजाई की विधि

जैट्रोफा की बिजाई बीजों से भी की जा सकती है तथा कटिंग्स अथवा कलमों से भी। इसी प्रकार इसकी बिजाई सीधे भी की जा सकती है

तथा नर्सरी बनाकर भी। इस संदर्भ में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया निम्नानुसार हो सकती है–

(क) बीज से जैट्रोफा का रोपण

बीज से जैट्रोफा का रोपण करने हेतु इसके अच्छी प्रकार पके हुए तथा अंदर से ठोस बीजों का चयन किया जाता है। इन बीजों को मई–जून माह में पॉलीथीन की थैलियों में रापित कर दिया जाता है। इससे पूर्व इन थैलियों को रेत, खेत की मिट्टी तथा गोबर खाद (तीनों को 33–33 प्रतिशत मात्रा में मिलाकर) से 75 प्रतिशत मात्रा तक भरा जाता है। थैलियां तैयार हो जाने पर इनमें से प्रत्येक थैली में एक–एक बीज जैट्रोफा का डाल दिया जाता है। तथा इन थैलियों की फव्वारे से हल्की सिंचाई कर दी जाती है। शीघ्र ही इन बीजों में अंकुरण होने लगता है तथा एकाध महीने के उपरान्त (जुलाई–अगस्त माह) में इन्हें खेतों में ट्रांस्प्लांट कर दिया जाता है। कई बार कई किसान नर्सरी बनाने की बजाए बीजों को सीधे गड्ढों में भी रोपित कर देते हैं रापित करने की प्रक्रिया में कुछ पौधे प्रारंभिक अवस्था में मर सकते हैं अतः इसे नर्सरी बनाकर लगाना ज्यादा उपयुक्त रहता है। एक एकड़ में लगभग 1000 पौधे लगेंगे जिनकी बिजाई के लिए लगभग 1 से 1.5 कि.ग्रा. बीजों की आवश्यकता होती है।

(ख) कलमें काटकर उनसे पौधे तैयार करना

कलमों से जैट्रोफा की बिजाई करने की स्थिति में जैट्रोफा के पुराने पौधों से एक से डेढ़ फीट लम्बी कलमें काट ली जाती हैं तथा इन्हें सीधे खेत की फेन्सिंग पर लगा दिया जाता है अथवा इन्हें नर्सरी तैयार होने के लिए रख दिया जाता है। कलमें लगाने का सर्वाधिक उपयुक्त समय जनवरी–फरवरी माह का होता है। वैसे ये कलमें जुलाई–अगस्त में भी लगाई जा सकती हैं।

3.1.21 खेत में रोपाई

जेट्रोफा की बिजाई चाहे बीजों द्वारा की जाए अथवा कलमों द्वारा, इन्हें खेत में लगाने से पूर्व खेत में अथवा फेंसिंग पर यथा संभव 2×2×2 फीट के गड्ढे खोद लिए जाने चाहिए जिनमें यदि हो सके तो प्रति गड्ढा 1 से 2 कि.ग्रा. गोबर खाद डाल दी जानी चाहिए। तदुपरान्त इन गड्ढों में

जैट्रोफा के बीजों/कलमों से तैयार पौध अथवा कलमों का रोपण कर दिया जाना चाहिए। रोपण के उपरान्त उस गड्ढे को मिट्टी से भर दिया जाना चाहिए। तथा यदि तत्काल एक सिंचाई की जा सके तो यह इसके लिए लाभकारी रहेगी। वैसे यदि इस समय प्राकृतिक बारिश हो रही हो तो यह और भी अच्छा रहेगा। पौधे से पौधे तथा कतार से कतार के बीच कितनी दूरी रखी जाए यह कई कारकों पर निर्भर करेगा। यदि इसे फेन्सिंग पर लगाया जाना प्रस्तावित हो तो पौधे से पौधे की दूरी 3 से 5 फीट रखी जा सकती है तथा यदि इसे खेत में लगाना हो (जिसमें बीच में किन्हीं दूसरे पौधें की इन्टरक्रॉपिंग की जाना प्रस्तावित हो), तो पौधे से पौधे की दूरी 5 फीट तथा कतार से कतार के मध्य की दूरी 8 फीट रखी जानी चाहिए। इस प्रकार 5×8 फीट की दूरी लगाने पर लगभग 1000 पौधे प्रति एकड़ लगेंगे।

3.1.22 जैट्रोफा की खेती से संबंधित की जाने वाली विभिन्न कृषि क्रियाएं

जैट्रोफा की खेती में कोई विशेष हिफाजत करने की आवश्यकता नहीं होती। यह पौधा प्राकृतिक रूप से अत्यधिक कम पानी में भी यह अच्छी प्रकार पनपने तथा बढ़ने की क्षमता रखता है। अतः यदि इसको माह में एक बार पानी दिया जा सके तब ता इसकी काफी अच्छी बढ़त होगी परन्तु यदि इसे प्राकृतिक वर्षा आधारित पौधे के रूप में लगाया जाए तब भी इसकी अच्छी बढ़त हो सकेगी। अतः प्राकृतिक वर्षा के आधार पर भी इसे लगाया जा सकता है। जहां तक इसकी निंराई–गुड़ाई अथवा खरपतवार नियंत्रण का प्रश्न है तो प्रारंभिक अवस्था में तो इसके बीच की खरपतवार निकालना आवश्यक होता है परन्तु एक बार जब यह 3–4 फुट की ऊंचाई प्राप्त कर ले तो इसके उपरान्त खरपतवार इसे प्रभावित नहीं कर पाते। हां! बीच–बीच में यदि इसके बीच आने वाली खरपतवार को निकलवाया जा सके तथा खेत खरपतवार रहित रहे तो यह ज्यादा उपयुक्त रहेगा। वैसे यदि किन्हीं दूसरे पौधों की इन्टरक्रापिंग बीच में की जा रही हो तो उनके लिए तो खरपतवार निकलवानी ही पड़ेगी जिससे जैट्रोफा स्वतः ही खरपतवार मुक्त रहेगा। वैसे एक वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने पर इसे खरपतवारों से किसी प्रकार की परेशानी नहीं होती।

3.1.23 पौधों की ट्रिमिंग अथवा प्रूनिंग/छंटाई

पौधों की अच्छी बढ़त हो तथा इनकी ज्यादा से ज्यादा शाखाओं का प्रसार हो, इसके लिए प्रारंभिक पांच वर्षों तक प्रति वर्ष बसन्त ऋतु से पूर्व इसकी टहनियों की ट्रिमिंग अथवा छंटाई करना उपयोगी रहता है। इससे जहां पौधें में ज्यादा संख्या में शाखाओं का फुटाव होता है, वहीं उनसे फलों की आवक भी बढ़ जाती है। अतः यथासंभव प्रारंभिक पांच वर्षों तक प्रति वर्ष पौधों की छंटाई अथवा ट्रिंमिंग करते रहना चाहिए।

3.1.24 खाद की व्यवस्था

बिजाई करते समय जैट्रोफा के प्रत्येक गड्ढे मेंगोबर खाद भरने के अतिरिक्त प्रतिवर्ष ट्रिमिंग करने के उपरान्त प्रत्यक पौधे के पास 2 कि.ग्रा. गोबर की पकी हुई खाद डाल दी जानी चाहिए। इससे जहां पौधों की बढ़त अच्छी होगी वहीं फलन भी अच्छा होगा।

3.1.25 जैट्रोफा के पौधों का फलन

बिजाई के दूसरे वर्ष से जैट्रोफा के पौधों पर फूल लगने प्रारंभ हो जाते हैं। प्रायः जुलाई–अगस्त माह में ये फूल गुच्छों में आते हैं तथा तदुपरान्त इनसे फल बनते हैं। प्रारंभ में ये फल हरे होते हैं जबकि पक जाने पर ये काले हो जाते हैं। फलों के पक जाने के उपरान्त इनको तोड़ लिया जाता है तथा कुछ दिनों तक अच्छी प्रकार सुखा लेने के उपरान्त इन्हें सावध ाानी पूर्वक कूटकर इनके बीच के बीज एकत्रित कर लिये जाते हैं। ये बीज काले भूरे रंग के होते हैं तथा एक फल में इनकी संख्या 3 से 4 तक होती है। व्यवसायिक दृष्टि से जैट्रोफा का उपयोगी भाग ये फल अथवा बीज ही होते हैं।

3.1.26 जैट्रोफा के पौधों से उत्पादन

जैट्रोफा के पौधे दूसरे वर्ष से फल देना प्रारंभ कर देते हैं। प्रारंभिक वर्षों में फलों की संख्या कम रहती है जबकि आगामी वर्षों में पौधों की बढ़त एवं प्रसार के साथ–साथ फलों की मात्रा भी बढ़ती जाती है। अभी जिन क्षेत्रों में इसकी विधिवत खेती हो रही है उसके परिणाम दर्शाते हैं कि प्रायः दूसरे वर्ष में एक एकड़ से लगभग 100 कि.ग्रा. फल (100 ग्राम फल प्रति वृक्ष) प्राप्त होते हैं जो कि पांचवें वर्ष तक 500 किलोग्राम प्रति एकड़ तक हो जाते हैं। उत्पादन की यह मात्रा आगामी वर्षों में अधिकतम 1000 कि.ग्रा. प्रति एकड़ तक हो सकती है। इस प्रकार द्वितीय वर्ष से यह फसल लगभग 1000 रू. , दूसरे से पांचवें वर्ष तक 5000 रू., तथा पांचवें वर्ष के उपरान्त 10000 रू. प्रति एकड़ का उत्पादन दे सकती है। फसल पर होने वाले समस्त खर्चों को कम कर दिया जाए तो इससे दूसरे वर्ष में लगभग 200 रू., दूसरे से पांचवें वर्ष में प्रतिवर्ष लगभग 3800 रू., तथा उसके उपरान्त प्रतिवर्ष लगभग 8000 से 9000 रू. प्रति एकड़ का शुद्ध लाभ होना संभावित होता है।

3.1.27 जैट्रोफा की फसल के साथ ली जा सकने वाली अन्य फसलें अथवा अंर्तवर्तीय फसलें

निःसन्देह राजस्थान को छोड़कर (जहां विशेष रूप से मरु क्षेत्रों में भूमि काफी सस्ती है तथा जहां दूसरी फसलें नहीं ली जा सकतीं) शेष भारत में (विशेषतया जो क्षेत्र ज्यादा उपजाऊ हैं), खेत में केवल जैट्रोफा की एकल खेती करना ज्यादा लाभकारी नहीं होता, परन्तु यदि इसके साथ–साथ अथवा इसके बीच में दूसरी फसलें ली जा सकें तो मिश्रित फसल की दृष्टि से यह काफी लाभकारी हो सकता है। उदाहरणार्थ जैट्रोफा के बीच लतावर्गीय फसलें जैसे करेला, कलिहारी, केवांच, गुड़मार आदि लेना काफी उपयुक्त रहेगा क्योंकि इससे एक तरफ जहां इन लताओं के लिए आरोहरण की माकूल व्यवस्था हो जाएगी, वहीं जेट्रोफा से भी अतिरिक्त लाभ प्राप्त होगा। इसी प्रकार राजस्थान, गुजरात एवं हरियाणा के गर्म क्षेत्रों के संदर्भ में इसके बीचों–बीच सफेद मूसली जैसी महंगी फसलें लेना काफी उपयुक्त रहेगा। क्योंकि यह उन क्षेत्रों में तापमान को कम रखेगा तथा ये फसलें लू आदि से बची रहेंगी। इस प्रकार जैट्रोफा के साथ–साथ अथवा इसके बीचों–बीच कई प्रकार की औषधीय एवं अन्य फसलें लेने से इन क्षेत्रों में उन फसलों की खेती आसानी से ली जा सकेगी।

3.1.28 जैट्रोफा की खेती के संदर्भ में प्रमुख निष्कर्ष

जैट्रोफा के उपयोगों तथा इसकी खेती से संबंधित हुई उपरोक्त चर्चा के मुख्य निष्कर्ष निम्नानुसार हैं–

- यद्यपि जैट्रोफा का तेल डीजल के विकल्प के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है परन्तु इसकी उत्पादन लागत काफी अधिक आने के कारण वर्तमान परिस्थितियों में (संभवतया आने वाले काफी समय तक) डीजल के स्थान पर इसका उपयोग करना न तो बुद्धिमत्तापूर्ण होगा तथा न ही उपयुक्त।
- ऐसे क्षेत्र जहां भूमि अत्याधिक सस्ती है अथवा जहां और कोई फसल

नहीं हो सकती जैट्रोफा की फसल एकल फसल के रूप में ली जा सकती है।

- तेज हवा को रोकने (विन्ड ब्रेकर के रूप में) तथा खेत में तापमान को कम रखने जिससे दूसरे पौधों को लू आदि न लगे, की दृष्टि से जैट्रोफा का उपयोग लाभकारी हो सकता है।
- उपजाऊ जमीनों, सिंचाई के साधनों वाली जमीनों तथा महंगी जमीनों में एकल फसल के रूपमें संभवतया जैट्रोफा की खेती व्यवसायिक रूप से ज्यादा लाभकारी नहीं रहेगी।
- क्योंकि जैट्रोफा अत्यधिक गर्मी भी सहन कर लेता है तथा ठंडी जलवायु भी, इसे सिंचाई की आवश्यकता भी नहीं होती तथा इसे कोई जानवर भी नहीं खाता अतः बंजर भूमि के विकास तथा बंजर जमीनों में त्वरित हरियाली लाने के उद्देश्य से जैट्रोफा एक सर्वाधिक उपयुक्त पौधा हो सकता है।

3.1.29 एक फसल के रूप में लेने पर जैट्रोफा की खेती पर होने वाले आय–व्यय का विवरण (प्रति एकड़)

क्र.	खर्च की मदें	प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष	तृतीय वर्ष	चतुर्थ वर्ष	पांचवा वर्ष	पांचवें वर्ष
1.	नर्सरी बनाने की लागत	1000	–	–	–	–	–
2.	गड्ढे खोदने की लागत	2000	–	–	–	–	–
3.	बीज की लागत (2 किग्रा. बीज)	200	–	–	–	–	–
4.	खाद पर खर्च	500	500	500	500	500	500
5.	वृक्षारोपण की लागत	1000	–	–	–	–	–
6.	छंटाई पर व्यय	–	200	200	200	200	200
7.	विभिन्न कृषि क्रियाओं पर व्यय	500	250	250	250	250	250
8.	फलों की तुड़ाई पर व्यय	250	250	250	250	250	250
	कुल खर्च	**5200/**	**1200**	**1200**	**1200**	**1200**	**1200**
(ख)	प्राप्तियां (दस रुपया प्रति किग्रा. की दर से)	– किग्रा. फल)	– (100 किग्रा. फल)	5000/– (500 किग्रा. फल)	5000/– (500 किग्रा. फल)	5000/– (500 किग्रा फल)	10000/– (1000
(ग)		–5200/–	200/–	+3800	+3800	+3800	+8800
(पांच वर्षों में कुल लाभ =21150–10450				**=10700**			

❖❖❖

इकाई– 3

लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. डीजल इन्जन का आविष्कार किसने और कब किया था?
2. जैट्रोफा का वैज्ञानिक नाम क्या है और किसने दिया?
3. जैट्रोफा का ग्रीक भाषा में क्या अर्थ है?
4. जैट्रोफा के बीज में कितना प्रतिशत तेल पाया जाता है?
5. जैट्रोफा के बिजाई के लिए एक एकड़ में कितने पौधों की आवश्यकता होती है?

खाली स्थान भरो :

1. रत्नजोत का वनस्पतिक नाम .....है।
2. जैट्रोफा के बीजों में.....नामक एल्केलॉयड पाया जाता है।
3. जैट्रोफा के तेल में सैपोनिफिकेशन वैल्यू.....होता है।
4. बायो बाड़ के रूप में प्रयुकत किया जाने वाला पौधा..... .....का है।
5. जैट्रोफा के तेल में.....प्रतिशत सैचुरेटेड फैटी एसिड्स तथा.....प्रतिशत अनसैचुरेटेड फैटी एसिड्स रहता है।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न :

1. बायोडीजल का इतिहास क्या है? जेट्रोफा की उपयोगिता का वर्णन करें।
2. जेट्रोफा की कृषि तकनीकी का विस्तार से वर्णन करें।
3. जैट्रोफा की आर्थिकी पर प्रकाश डालें।

❖❖

इकाई – 4

4.1 **कन्याओं का सौन्दर्य बढ़ाने वाला पौधा : ग्वारपाठा**

4.1.1 भूमिका

4.1.2 उद्देश्य

4.1.3 ग्वारपाठा के औषधीय उपयोग

4.1.4 ग्वारपाठा की प्रमुख जातियां अथवा किस्में

4.1.5 ग्वारपाठा की रासायनिक संरचना

4.1.6 ग्वारपाठा की उन्नत प्रजातियां

4.1.7 ग्वारपाठ की खेती की विधि

4.1.8 उपयुक्त मिट्टी

4.1.9 उपयुक्त जलवायु

4.1.10 भूमि की तैयारी

4.1.11 ग्वारपाठा का प्रवर्धन

4.1.12 बिजाई की विधि

4.1.13 सिंचाई की आवश्यकता तथा सिंचाइ व्यवस्था

4.1.14 निराई–गुड़ाई तथा खरपतवार नियंत्रण

4.1.15 खाद की आवश्यकता

4.1.16 ग्वारपाठा के प्रमुख रोग एवं बीमारियाँ

4.1.17 फसल की कटाई

4.1.18 उत्पादन की मात्रा

4.1.19 ग्वारपाठा की खेती के आर्थिक पहलू

4.2 **प्रत्येक गृहवाटिका में लगाये जाने योग्य उपयोगी औषधीय पौधा : कालमेघ**

4.2.1 भूमिका

4.2.2 उद्देश्य

4.2.3 कालमेघ का रासायनिक संगठन

4.2.4 कालमेघ की औषधीय उपयोगिता

4.2.5 क्या कालमेघ तथा चिरायता एक ही हैं?

4.2.6 कालमेघ की खेती की विधि

4.2.7 उपयुक्त जलवायु

4.2.8 उपयुक्त मिट्टी

4.2.9 कालमेघ का प्रवर्धन

4.2.10 खेत की तैयारी

4.2.11 पौध की खेत में ट्रान्सप्लांटिंग

4.2.12 निराई–गुड़ाई तथा खरपतवार नियन्त्रण

4.2.13 सिंचाई की व्यवस्था

4.2.14 खाद तथा कीटनाशकों की आवश्यकता

4.2.15 फसल की तैयारी अथवा फसल का पकना

4.2.16 कालमेघ की बिक्री व्यवस्था

4.2.17 बीज प्राप्ति तथा पुर्नखरीदी की सुविधा

4.2.18 कालमेघ की खेती के संदर्भ में मुख्य समस्या

4.2.19 कालमेघ की फसल से उत्पादन तथा प्राप्तियाँ

4.2.20 कालमेघ के साथ अंर्तवर्तीय फसलें

4.2.21 आय–व्यय का विवरण

इकाई –4

4.1 कन्याओं का सौन्दर्य बढ़ाने वाला पौधा

ग्वारपाठा (*Aloe barbadensis* Mill)

4.1.1 भूमिका

ग्वारपाठा, अथवा घृतकुमारी उन सस्ते परन्तु महत्वपूर्ण पौधों में से है जिनका औषधीय एवं सौन्दर्य प्रसाधनों के निर्माण में सदियों से उपयोग होता आ रहा है। कुमारी के नाम से जाने जाने वाले तथा त्वचा में नयापन लाने वाले इस औषधीय पौधे की महत्ता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि जितना प्रिय यह आज के सौंदर्य प्रसाधन विशेषज्ञों तथा महिलाओं में है, उतना ही प्रिय यह क्लियोपेट्रा को भी था तथा उसके सौन्दर्य प्रसाधनों में भी इसे प्रमुख स्थान प्राप्त था। **भाव प्रकाश** में इसके गुणों का वर्णन निम्नानुसार किया गया है–

कुमारी गृहकन्या च कन्या घृतकुमारिका
कुमारी भेदनी शीता तिक्ता नेत्रया रायनी!
मधुरा बृंहणी बल्या वृष्या वातविषप्रणुत्
गुल्म प्लीहयकृद्वृद्धिकफज्वहरी हरेत्!!

अर्थात् कन्याओं के सौंदर्य को बढ़ाने वाली घृतकुमारी सूजन तथा ज्वर भी दूर करती है।

ग्वारपाठा का पौधा

पौधे का सामान्य विवरण

ग्वारपाठा की उत्पत्ति पूर्वी तथा दक्षिणी अफ्रीका, फनारी द्वीप समूह तथा स्पेन में होना मानी गई है। कि वेस्ट इंडीज़, भारत तथा चीन में यह सोलहवीं शताब्दी में पहुंचा। अत्यधिक आसानी से पनपने वाला यह पौधा यूं तो प्राकृतिक अवस्था (जंगली अवस्था) में भी काफी स्थानों पर (विशेषतया कब्रिस्तानों में) उगा हुआ देखा जा सकता है परन्तु औषधीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कई क्षेत्रों में इसका व्यवसायिक कृषिकरण भी प्रारंभ हो चुका है। वर्तमान में राजस्थान, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, आंध्रप्रदेश, गुजरात तथा कई अन्य राज्यों में इसकी काफी बड़े पैमाने पर खेती प्रारंभ हो चुकी है।

ग्वारपाठा एक से दो फुट ऊँचा एक छोटा पौधा (क्षुप) होता है। इसकी मांसल पत्तियां लगभग 12 इंच से 15 इंच तक लम्बी, 4 इंच तक चौड़ी तथा लगभग पौन इंच (3/4इंच) मोटी होती हैं जो बीच से ऊपर की ओर पतली होती चली जाती है। ये पत्तियां पौधे के तने से जुड़ी रहती हैं तथा इने किनारों पर दंतुर कांटे होते हैं। पौधे के मध्य से एक पुष्पध्वज निकलता है जिस पर हल्के लाल रंग के फूल मंजरी में आते हैं। इस पुष्प ध्वज पर शीतकाल के अंत में पुष्प तथा फल लगते हैं।

औषधीय उपयोग में मुख्यतया ग्वारपाठा के पत्तों का उपयोग किया जाता है। इन पत्तों को काटने पर उनके अंदर से पीले रंग का जैल अथवा रस निकलता है। यह जैल (रस) ही इस पौधे का उपयोगी तत्व होता है। यह रस, जोकि ठंडा होने पर जम जाता है, कुमारीसार, एलुआ, विब्र, एलोज़ अथवा मुसब्बर के नाम से जाना जाता है। अभी तक हमारे देश में मुसब्बर बनाने की परम्परागत विधियां ही प्रचलन मे हैं, जबकि विश्व के कई भागों में इसे बनाने हेतु स्वचालित इकाइयां स्थापित हो चुकी हैं। क्योंकि अभी तक उच्च गुणवत्ता का मुसब्बर बनाने की इकाइयां हमारे देश में नहीं हैं अतः अभी भी हमारे यहां यह (मुसब्बर) काफी मात्रा में आयात होता है तथा केवल स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ही देशीय पद्धति से बने हुए मुसब्बर की मांग रहती है।

4.1.2 उद्देश्य : ग्वारपाठा की खेती से संबंधित सभी वैज्ञानिक जानकारियां उपलब्ध कराना।

4.1.3 ग्वारपाठा के औषधीय उपयोग

विभिन्न औषधीय कार्यों हेतु ग्वारपाठा का उपयोग जितना परम्परागत चिकित्सा पद्धतियों तथा घरेलू उपचारों में किया जाता रहा है उतना ही आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों में भी हो रहा है। नीलगिरी के कोटा आदिवासी लोग इसके गूदे का उपयोग जोड़ों के दर्द के इलाज हेतु करते आ रहे हैं।

मध्यप्रदेश के गोंड आदिवासी समुदायों के लोग इसका उपयोग जख्मों के उपचार हेतु करते हैं। गांवों में छोटे बच्चों को मां का दूध पीने की जिद से हटाने के लिए अभी भी महिलाओं द्वारा इसके जूस का लेप अपने स्तनों पर किया जाता है (क्योंकि यह थोड़ा कड़वा होता है परन्तु नुकसान दायक नहीं)। यूनानी हकीमों द्वारा इसमें घी, शक्कर तथा दूध मिलाकर ग्वारपाठे का हलवा बनाया जाता है जिससे सामान्य दुर्बलता तो दूर होती ही है, यौनशक्ति भी बढ़ती है। बच्चों की आंतों के कीड़ों के उपचार हेतु भी इसका उपयोग किया जाता है। पेट की बीमारियों तथा अपच के उपचार हेतु भी इसे अजवायन के साथ मिलाकर प्रयुक्त किया जाता है। लीवर, स्पलीन, तंत्रिका तंत्र तथा महिला प्रजनानंगों में नवशक्ति के संचार हेतु भी इसका उपयोग प्रभावी पाया जाता है। उपरोक्त के अतिरिक्त जिन अन्य प्रमुख विकारों के निदान में यह उपयोगी भी पाया जाता है, वे निम्नानुसार हैं–

- **खूनी अतिसार के उपचार में–** खूनी अतिसार की स्थिति में ग्वारपाठा के गूदे को शक्कर तथा जीरे के साथ लेने से राहत पहुंचती है।
- **पेशाब संबंधी रोगों के उपचार हेतु–** विभिन्न पेशाब संबंधी रोगों जैसे पेशाब में रक्त आना, पेशाब में जलन आदि होने की स्थिति में ग्वारपाठा के गूदे को पहले पानी में धोकर एक सप्ताह तक प्रतिदिन सुबह–सुबह सेवन करने से लाभ मिलता है।
- **मुंहासे तथा फोड़े फुन्सियों के उपचार हेतु–** मुहांसों तथा फोड़े फुन्सियों के उपचार हेतु ग्वारपाठे का गूदा प्रभावित स्थान पर लगाना लाभकारी रहता है।
- **जलन, खुजली तथा कीड़े काटने के उपचार हेतु–** त्वचा पर जलन अथवा खुजली होने तथा कीड़े आदि के काटने की स्थिति में ग्वारपाठे के पत्तों को छीलकर, इन्हें थोड़ी देर धूप में एक्सपोज़ करने के उपरान्त प्रभावित स्थान पर मलने से राहत मिलती है।

- **सर्दी तथा खांसी के उपचार हेतु–**ग्वारपाठा के पत्ते को भूनकर उसका जूस निकालकर इस जूस का आधा चम्मच एक कप गर्म पानी में मिलाकर सेवन करने से सर्दी–खांसी में लाभ होता है।
- **गैस, कब्ज तथा पेट की अन्य परेशानियों के उपचार हेतु–** कब्ज़ अथवा गैस आदि होने की स्थिति में 2 चम्मच ग्वारपाठा के तेल का सोते समय सेवन करने से लाभ मिलता है।
- **बाल झेड़ने तथा अनिद्रा के उपचार हेतु–** बाल झड़ने तथा नींद न आने की स्थिति में ग्वारपाठा के पत्तों के जूस तथा जिंजली ऑयल को मिलाकर इन्हें तब तक गर्म किया जाता है जब तक इनकी नमी सूख न जाए। इस प्रकार तैयार किए गए प्रेपरेशन की रात को सोते समय सिर पर मालिश करने से अनिद्रा तथा बाल झड़ने की समस्या से छुटकारा मिलता है।
- **आंखों में लालिमा–** आंखें लाल रहने की स्थिति में ग्वारपाठा के गूदे की पट्टी बनाकर आंखों के आईलिड्स पर बांधने से लाभ मिलता है।
- **जोड़ों का दर्द–** जोड़ों के दर्द में ग्वारपाठे के पल्प को गर्म करके प्रभावित स्थानों पर लगाने से राहत मिलती है।
- **पेट में अल्सर्स आदि होने पर –** पेट में अल्सर्स तथा गैस आदि जैसे विकार होने पर ग्वारपाठे का ताजा गूदा प्रातःकाल खाली पेट लेने की सलाह दी जाती है। यह नुस्खा काफी लागों पर आजमाया जा चुका है तथा इसके परिणाम काफी अधिक उत्साहवर्धक रहे हैं। वस्तुतः पेट की सभी प्रकार की बीमारियों में ग्वारपाठा के गूदे का खाली पेट सेवन करना लाभकारी पाया गया है।

जहां तक आधुनिक चिकित्सा पद्धति में ग्वारपाठा के उपयोग का प्रश्न है तो कई आधुनिक चिकित्सकों द्वारा इसका विभिन्न विकारों के निदान हेतु बखूबी उपयोग किया गया है। उदाहरणार्थ श्री एम.ए. अजब नूर ने वर्ष 1991 में तथा श्री जे.एम. मूसा ने वर्ष 1985 में किए गए परीक्षणों में यह पाया कि ग्वारपाठा में मधुमेहनाशी गुण पाए जाते हैं। इसी प्रकार श्री पी.एन. कुरूप तथा उनके साथियों ने वर्ष 1979 में ग्वारपाठा में **बाल दोबारा उगाने संबंधी गुणों** की जानकारी दी। श्री एम. सिंह तथा उनके साथियों ने वर्ष 1973 में पाया कि ग्वारपाठा का

जेल 'थर्मल बर्नस' तथा रेडिएशन से उत्पन्न घावों के इलाज में उपयोगी होता है। ग्वारपाठा के एक्सट्रेक्ट की भी कई विकारों के निदान में उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। उदाहरणार्थ इसका एक्सट्रैक्ट एक एन्टीवायरल एजेन्ट (एसिडो थायमिडाइन) के सहयोग से एड्स के उपचार में प्रभावी माना जा रहा है। ब्रोन्कल एस्थमा के मरीजों में भी इसे उपयोगी पाया गया है। सदियों से इसका उपयोग किडनी से संबंधित विभिन्न समस्याओं, यौनशक्ति तथा यौनेच्छा को बढ़ाने, मैमरी ग्लेन्ड्स के विकास तथा सिरदर्द एवं बच्चों के बुखार के उपचार आदि हेतु किया जाता रहा है। नॉन एन्सुलिन डिपेन्टेन्ट डायबिटीज़ के मरीजों हेतु भी इसकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है।

उपरोक्तानुसार देखा जा सकता है कि ग्वारपाठा काफी अधिक औषधीय उपयोग का पौधा है जिसका आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों में भी उतना ही महत्व है जितना परम्परागत चिकित्सा में था। विशेष रूप से सौंदर्य प्रसाधनों, पेट से संबंधित विकारों, कफ विकारों, जोड़ों के दर्दों, मूत्र संस्थान संबंधी विकारों, महिलाओं के रोगों आदि में इसकी उपयोगिता निरन्तर बढ़ती जा रही है। तथा अच्छी गुणवत्ता के ग्वारपाठा की प्राप्ति की दृष्टि से इसका कृषिकरण आज की आवश्यकता बन चुका है।

4.1.4 ग्वारपाठा की प्रमुख जातियां अथवा किस्में : यूं तो विश्व भर में ग्वारपाठा की 275 जातियां पाई जाती हैं परन्तु जो तीन प्रमुख जातियां औषधीय एवं व्यवसायिक दृष्टि से ज्यादा महत्वपूर्ण हैं, वे हैं– *एलो बारबेडन्सिस मिल* अथवा *ऐलो वेरा टोर्न एक्स लिन्न* जिससे कुराकाओं अथवा भारतीय अथवा बार्बेडोज़ एलो मिलता है; एलो फेरोक्स मिलर जिससे जंजीबार एलो अथवा केप एलो प्राप्त होता है; तथा एलो पैरी बेकर जिससे सोकोट्रीन एलो प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त एलो अफ्रीकाना तथा एलोस्पाईकाटा भी है जो अपेक्षाकृत कम महत्व वाली जातियां हैं। ग्वारपाठा की कई भारतीय जातियां भी हैं जैसे चाइनीज़ बेकर, लिट्रोलीस कोईंग बेकर तथा एलो वेरीगाटा लिन आदि।

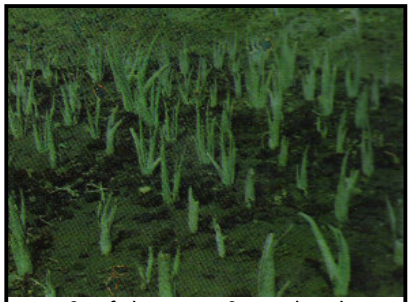

बिजाई हेतु प्रयुक्त किए जाने वाले ग्वारपाठा के साइड टिलर्स

4.1.5 ग्वारपाठा की रासायनिक संरचना : ग्वारपाठा तथा इससे निकाले जाने वाले पदार्थ एलुआ में ''एलोइन'' नामक ग्लूकोसाइड्स का समूह पाया जाता है जिसके कारण इसकी रासायनिक क्रिया होती है। इस ग्लूकोसाइड की मात्रा ग्वारपाठा की विभिन्न जातियों में कम–ज्यादा होती हैं तथा इसकी सर्वाधिक मात्रा एलोवेरा अथवा कुराकाओ जाति में (22 प्रतिशत तक) पाई जाती है। एलोइन के अतिरिक्त इसमें एलो–इमोदिन एलोयटिक एसिड, होमोनेटोलियन, एलोइजिन, इमोडिन क्रायज़मिनिक एसिड, क्रायसोफेनिक एसिड, एपोयस, ग्लैक्टुरोनिक एसिड, कैल्शियम आग्ज़ेलेट, कोलिन, कोलिन ऐलीसाईलेट, सैपोनिन्स, यूरोनिक एसिड, शर्करा, म्यूकोपोलीसैक्रीड्स 7–हाईड्रोक्सी क्रोमोन, कैनीफिरल एल्कोहल, ग्लाइकोसेमीनस हैग्जूरोनिक एसिड, एमाइलेस, एलीनेस आदि तत्व भी पाए जाते हैं। ग्वारपाठा के जूस में कैल्शियम (4%) सोडियम (1.43%), पोटेशियम (6.6%) क्लोराइड (12.2%) तक मैंगेनीज़ (0.01%) का होना पाया गया है।

4.1.6 ग्वारपाठा की उन्नत प्रजातियां

एलोइन तथा जैल उत्पादन की दृष्टि से **नेशनल ब्यूरो ऑफ प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज़** द्वारा ग्वारपाठा की कई उन्नत प्रजातियां निकाली गई हैं। इनमें से आई.सी. 111271, आई.सी. 111269, आई.सी. 111280, आई.सी. 111273, आई.सी. 111267 तथा आई.सी. 111279 एलोइन की मात्रा की दृष्टि से तथा आई.सी. 111267, आई.सी. 111666, आई.सी. 111280, आई.सी. 111272 तथा 111277 को जेल की मात्रा की दृष्टि से उन्नत माना जाता है। सीमेप लखनऊ द्वारा भी ग्वारपाठा की एक उन्नत प्रजाति अकंचा (ए.एल.–1) विकसित की गई है।

4.1.7 ग्वारपाठा की खेती की विधि

ग्वारपाठा एक ऐसा पौधा है जिसे यूं तो कहीं भी उगाया जा सकता

है परन्तु जिस प्रकार से सौन्दर्य प्रसाधनों जैसे विशिष्ट उत्पादों में इसका उपयोग बड़े स्तर पर होने लगा है (जिनमें पौधे के स्त्रोत, उसकी रासायनिक संरचना तथा उसके उत्पादन की तकनीक आदि के बारे में विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती है), उससे ग्वारपाठा की बड़े एवं व्यवसायिक स्तर पर व्यवस्थित खेती की आवश्यकता महसूस होने लगी है। महाराष्ट्र, गुजरात तथा राजस्थान में कई क्षेत्रों में काफी बड़े पैमाने पर इसकी खेती प्रारंभ भी हो चुकी है। इन क्षेत्रों में हो रहे इसके कृषिकरण के आधार पर ग्वारपाठा की खेती की उपयुक्त विधि को निम्नानुसार देखा जा सकता है–

4.1.8 उपयुक्त मिट्टी

यूं तो ग्वारपाठा विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाया जा सकता है परन्तु यह हल्की रेतीली दोमट तथा भारी दोमट मिट्टियों में अच्छी प्रकार पनपता है। वैसे यह पौधा असिंचित, रेतीली, पथरीली तथा ढलानदार भूमि के लिए ज्यादा उपयुक्त माना जाता है। यह फसल जलभराव की स्थिति सहन नहीं कर पाती तथा 6.5 से 8.5 (अधिकतम 9.5 पी.एच. तक) पी.एच. वाली ज़मीनों में इसकी अच्छी बढ़त देखी गई हैं शुष्क जलवायु तथा हल्की ज़मीनों के लिए भी यह उपयुक्त फसल है। ग्वारपाठा की जड़ें जमीन में ज्यादा गहरी नहीं जातीं, अतः 1 से 1.5 फीट तक गहरी मिट्टियों में भी इसे सफलतापूर्वक लगाया जा सकता है।

खेत में लगी हुई ग्वारपाठा की उत्कृष्ट फसल

4.1.9 उपयुक्त जलवायु

ग्वारपाठा के पौधे के लिए गर्म आर्द्र से अर्धशुष्क तथा उष्णकटिबंधीय जलवायु उपयुक्त होती है। इस फसल को तुषार अथवा पाले से बचाए रखने की आवश्यकता होती है। वैसे सामान्यतया इस फसल के लिए गर्म तथा शुष्क जलवायु ज्यादा उपयुक्त रहती है।

4.1.10 भूमि की तैयारी

जिस क्षेत्र में ग्वारपाठा की खेती करनी हो उसे सर्वप्रथम खरपतवार अथवा घास आदि से मुक्त करना आवश्यक होगा जिसके लिए ग्रीष्म ऋतु में 2–3 बार इस खेत की जुताई की जानी वांछित होगी। खेत की गहरी जुताई करना अरूरी नहीं होता क्योंकि ग्वारपाठा की जड़ें जमीन से ज्यादा गहरी नहीं जाती। इस प्रकार 2–3 जुताइयां करके खेत को तैयार कर लेना चाहिए। अच्दी प्रकार जुताई कने के उपरान्त प्रति एकड़ लगभग 3 टन गोबर खाद अथवा कम्पोस्ट खाद अथवा 1.5 टन केंचुआ खाद के साथ–साथ 15 कि.ग्रा. **बायोनीमा जैविक खाद** खेत में मिला दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त दीमक आदि से सुरक्षा हेतु खेत में 200 कि.ग्रा. प्रति एकड़ की दर से नीम खली मिलाना उपयुक्त होता है। जिस समय ग्वारपाठा की खेती करनी हो उस समय खेत की जुताई करके तथा मिट्टी को थोड़ा नर्म बनाकर इस खेत में डेढ़–डेढ़ फीट की दूरी पर मेड़ें बना दी जाती हैं। इन मेड़ों की ऊंचाई लगभग एक फीट रखी जानी चाहिए।

4.1.11 ग्वारपाठा का प्रवर्धन

ग्वारपाठा का प्रबंधन जड़दार सकर्स अथवा जड़दार पौधों (साईड टिलर्स) अथवा बीजों द्वारा किया जाता है। प्रायः ग्वारपाठा के पुराने पौधे के आस–पास काफी मात्रा में छोटे पौधे अथवा साईड टिलर्स उग आते हैं। इन साईड टिलर्स अथवा सकर्स को मुख्य पौधे से अलग कर दिया जाता है तथा यही साइड टिलर्स प्लांटिंग मेटेरियल अथवा बीज का काम करते हैं। यूं तो ग्वारपाठा के पौधे पर बीज भी आते हैं परन्तु इनका उपयोग बिजाई हेतु प्रायः नहीं किया जाता।

4.1.12 बिजाई की विधि

खेत तैयार हो जाने तथा मेड़ें अथवा बंड बन जाने के उपरान्त इन डेढ़–डेढ़ फीट की दूरी पर बनाई गई मेड़ों पर 40–40 सें.मी. की दूरी पर ग्वारपाठा के सकर्स अथवा साइड टिलर्स रोपित कर दिए जाते हैं। यदि जमीन कम उपजाऊ हो तो पौधे से पौधे की दूरी एक–एक फीट भी रखी जा सकती है। प्रायः एक एकड़ में बिजाई हेतु लगभग 25000 सकर्स अथवा साईड टिलर्स की आवश्यकता पड़ती है। यूं तो ग्वारपाठा की बिजाई कभी भी

की जा सकती है। परन्तु वर्षा ऋतु के बाद का समय (सितम्बर–अक्टूबर) माह इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त पाया जाता है।

4.1.13 सिंचाई की आवश्यकता तथा सिंचाई व्यवस्था

ग्वारपाठा एक ऐसा पौधा है जो शुष्क भूमियों में भी उगाया जा सकता है तथा सिंचाई की सुविधा वाली भूमियों में भी। बिजाई के तुरंत बाद फसल की एक हल्की सिंचाई कर दी जानी चाहिए। इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु में जब गर्मी पूरे जोरों पर हो, उस समय इसे एक सिंचाई की आवश्यकता होगी। किसी भी स्थिति में दलदल की स्थिति नहीं बननी चाहिए तथा पानी ज्यादा देर तक पौधों के पास रुकना नहीं चाहिए। इस प्रकार यूं तो काफी कम सिंचाई व्यवस्था से भी ग्वारपाठा की फसल ली जा सकती है परन्तु विभिन्न शोध कार्यों में यह पाया गया है कि यदि सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था हो तो ग्वारपाठा के पौधों में जेल की मात्रा अपेक्षाकृत ज्यादा विकसित होती है। इस प्रकार यदि महीने में एक बार सिंचाई की व्यवस्था हो सके तो पौधों में तैयार होने वाली जेल की मात्रा में पर्याप्त बढ़ोत्तरी होगी तथा इसका उत्पादन भी बढ़ेगा।

4.1.14 निंराई–गुड़ाई तथा खरपतवार नियंत्रण

क्योंकि ग्वारपाठा धीरे बढ़ने वाला पौधा है अतः बिजाई के प्रथम वर्ष में खेत में खरपतवार के आने की संभावना हो सकती है। इन खरपतवारों की सफाई की दृष्टि से खेत की नियमित अंतरालों पर निंराई–गुड़ाई करना आवश्यक होगा। इससे एक ओर जहां पौधे खरपतवारों से मुक्त रहेंगे वहीं हाथ से गुड़ाई करने के कारण भूमि भी नर्म बनी रहेगी।, जिससे पौधों को फैलने के लिए भी पर्याप्त स्थान मिलेगा। इसके साथ–साथ कई बार पौधे जमीन से उखड़ भी सकते हैं अतः जिन पौधों के पास की मिट्टी हट जाए अथवा पौधे उखड़ने लगें, उन पर अच्छी प्रकार मिट्टी चढ़ा दी जानी चाहिए।

4.1.15 खाद की आवश्यकता

यूं तो ग्वारपाठा को ज्यादा खाद की आवश्यकता नहीं होती परन्तु यदि उपयुक्त समय पर पौधों को पर्याप्त मात्रा में खाद मिलजाए तो इससे उनकी बढ़त ज्यादा व्यवस्थित होगी। इस प्रकार प्रथम वर्ष में उपरोक्तानुसार खाद देने के साथ–साथ आगामी वर्षों में माह जून–जुलाई में प्रति एकड़ 500 कि.ग्रा. केचुआ खाद के साथ–साथ 15 कि.ग्रा. बायोनीमा जैविक खाद की ड्रिलिंग भी कर दी जानी चाहिए।

4.1.16 ग्वारपाठा के प्रमुख रोग एवं बीमारियां

अल्टरनेरिया *अल्टरनाटा* तथा *फ्यूजेरियम सोलानी* के प्रभाव से ग्वारपाठा में लीफ–स्पॉट बीमारी हो सकती है। इससे जहां पौधे की बढ़वार प्रभावित होती है वहीं इससे पौधों में तैयार होने वाली जेल की गंध भी प्रभावित होती है इससे सुरक्षा हेतु मैंकोजेब अथवा क्लोरोथैनोनिल की तीन ग्राम मात्रा को एक लीटर पानी में घोल करके स्प्रे किया जाना चाहिए। इनसे सुरक्षा हेतु जैविक विधियां भी प्रयुक्त की जा सकती हैं।

कटाई हेतु तैयार ग्वारपाठा के पत्ते

4.1.17 फसल की कटाई

बिजाई के लगभग एक वर्ष बाद ग्वारपाठा के पत्तों की कटाई की जा सकती है। इस कार्य हेतु तेज धार वाले हंसिए का उपयोग किया जाना चाहिए जिससे पत्ते को नीचे से व्यवस्थित रूप से काटा जा सके।

काटने के उपरान्त पौधे पर पुनः पत्ते आ जाते हैं जिन्हें अगले वर्ष काटा जा सकताहै। इस प्रकार यह फसल 4–5 वर्ष तक अच्छी उपज दे सकती है। पत्ते काटने के उपरान्त पौधों पर फफूंद का आक्रमण हो सकता है। जिससे बचाव के लिए डायथेन जेड–78 अथवा रोडोमील एम. जेड. का स्प्रे पौधों पर किया जा सकता है।

4.1.18 उत्पादन की मात्रा

प्रायः एक वर्ष पुरानी फसल से 20,000 से 25,000 कि.ग्रा. ताजा (हरे) पत्ते प्राप्त हो जाते हैं। इनके साथ ही लगभग 5000–6000 छोटे पौधे (साइड टिलर्स) भी प्राप्त हो जाते हैं जिन्हें आगे बिजाई हेतु प्रयुक्त किया जा सकता है। ग्वारपाठा की फसल से मिलने वाले उत्पादन की यह मात्रा तीन वर्ष तक बढ़ती जाती है परन्तु बाद में यह मात्रा गिरने लगती हैं।

4.1.19 ग्वारपाठा की खेती के आर्थिक पहलू

ग्वारपाठा की बिक्री तीन प्रकार से की जा सकती है– (क) इसके ताजे पत्तों की बिक्री, (ख) परम्परागत साधनों से जूस निकालकर इसकी बिक्री, तथा (ग) इसका स्वचालित तथा उच्च तकनीक वाली मशीनों से जेल निकालकर इसकी बिक्री। इन तीनों पहलुओं से इसकी बिक्री की संभावनाएं निम्नानुसार हैं–

क. ताजे पत्तों की बिक्री– वर्तमान में अधिकांशतः भारतीय किसानों द्वारा ग्वारपाठा की बिक्री इसके ताजा पत्तों के रूप में ही की जाती है। ताजा पत्तों की खरीदी कई आयुर्वेदिक कम्पनियों द्वारा विभिन्न उत्पाद बनाने हेतु की जाती हैं। इस रूप में इन पत्तों का बिक्री दर प्रायः 2–3 रु. प्रति कि.ग्रा. तक होता है। इसमें परेशानी यह है कि यदि ये पत्ते किसी दूरस्थ फैक्ट्री में सप्लाई करने हों तो इन पर परिवहन की लागत काफी अधिक आ जाती है। वैसे यदि इन पत्तों की बिक्री 2 रु. प्रति कि.ग्रा. की दर से की जाए तो एकएकड़ से किसान को लगभग 40000 रू. की कुल प्राप्तियां हो सकती हैं। इसमें से कम से कम 10000 रु. परिवहन पर व्यय हो जाएगा। हालांकि अभी तो ये प्राप्तियां काफी अच्छी प्रतीत होती हैं परन्तु भविष्य में ग्वारपाठा का उत्पादन बढ़ने से इसकी दरों में अनिवार्यतः कमी आएगी जिससे इससे होने वाली प्राप्तियों में भी कमी आएगी। वैसे आज की स्थिति में ताजा पत्तों की

बिक्री के आधार पर प्रतिवर्ष 25000 से 35000 रु. तक की प्राप्तियां हो सकती हैं।

ख. परम्परागत विधियों से जूस निकालकर बिक्री करना : वर्तमान में कई बीज प्रदायकों तथा परामर्शदाताओं द्वारा परम्परागत विधियों से (मात्र चाकू तथा कुछ अन्य साधनों का उपयोग करके) ग्वारपाठा का जूस निकालकर बाजार में बेचने का दावा किया जा रहा है, जिसका काफी ज्यादा प्रचार हो रहा है। दुर्भाग्यवश इस विधि से जूस निकालना तकनीकी रूप से ज्यादा उपयुक्त नहीं पाया जा रहा तथा इसे बाजार में स्वीकार्यता भी नहीं मिल पा रही। हालांकि काफी अधिक किसान इस प्रचार से प्रभावित हो रहे हैं तथा काफी बड़े स्तर पर इसकी खेती प्रारंभ कर रहे हैं। परन्तु उन्हें यह बात गौर कर लेनी चाहिए कि इस विधि से निकाले गए जूस को व्यवसायिक स्तर का अच्छा देशीय बाजार तक नहीं मिल सकता– इसे निर्यात करना तो दूर। वैसे भी यह सर्वविदित तथ्य है कि **जेल का प्रभाव इसकी ताजगी में ही है तथा यदि इस जेल को डेढ़ घंटे तक खुले वातावरण तथा प्रकाश में रखा जाए तो इसके अधिकांश औषधीय गुण नष्ट हो जाते हैं।**

(ग) आधुनिकतम तकनीकों से ग्वारपाठा से जेल उत्पादित करना– निःसन्देह अत्याधुनिक मशीनों तथा उच्च तकनीकी का उपयोग करके यदि ग्वारपाठा जेल उत्पादित किया जाए तो इसका न केवल अन्तर्देशीय बल्कि अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर भी इसका काफी अच्छा बाजार हो सकता है। दुर्भाग्यवश अभी तक इस प्रकार की ज्यादा इकाइयां स्थापित नहीं हो पाई हैं। उपरोक्तानुसार वर्णित तीनों विधियों में से वर्तमान में केवल ताजा पत्तों की बिक्री ही एकमात्र रास्ता है जिसे ग्वारपाठा की खेती के इच्छुक किसान अपना सकते हैं। इसमें भी यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि एक तो इसके परिवहन पर काफी अधिक लागत आती है दूसरे जिस प्रकार से ग्वारपाठा की खेती का प्रसार हो रहा है उससे इसकी कीमतों में भी गिरावट आना अवश्यम्भावी है।

निःसन्देह औषधीय दृष्टि से ग्वारपाठा एक अत्यधिक उपयोगी पौधा है तथा जितने औषधीय एवं सौंदर्य प्रसाधनों में इसका वर्तमान में उपयोग हो रहाहै उससे तो यह लगने लगा है जैसे मानो सारा आयुर्वेद ग्वारपाठा तक

ही सिमट गया हो (वैसे संयुक्त राज्य अमेरिका के अंतर्राष्ट्रीय बाजार के सर्वाधिक मांग वाले औषधीय पौधों में ग्वारपाठा को सातवां स्थान प्राप्त है)। परन्तु यदि किसान की दृष्टि से देखा जाए अथवा व्यवसायिक स्तर पर इसकी लाभप्रदता की दृष्टि से देखा जाए तो यह उतना लाभप्रद (कम से कम वर्तमान) में नहीं है। संक्षेप में ग्वारपाठा की खेती करने के इच्छुक किसानों को यह बात अच्छी तरह ध्यान में रखनी चाहिए कि क्योंकि इसकी खेती आसान है, इसकी खेती के लिये ज्यादा सिंचाई की आवश्यकता नहीं है, इसकी खेती किसी भी प्रकार की जमीन में हो सकती है, इसका उत्पादन काफी अधिक होता है तथा इसके परिवहन की लागत काफी अधिक आती है अतः जब तक उच्च तकनीक पर आधारित जेल निर्माण के उद्योग प्रारंभ नहीं होते तब तक ग्वारपाठा की खेती करने के लिए काफी सोच विचार की आवश्यकता होगी। विशेष रूप से वे किसान जो किन्हीं बीज प्रदायकों अथवा परामर्शदाताओं अथवा पुर्नखरीदी का लोभ देने वाले व्यक्तियों के आश्वासन पर ग्वारपाठा की खेती करने जा रहे हों, उन्हें इस बहुउपयोगी औषधीय पौधे की खेती के संदर्भ में ज्यादा सचेत रहने की आवश्यकता है।

❖❖❖

4.2 प्रत्येक गृहवाटिका में लगाए जाने योग्य उपयोगी औषधीय पौधा

कालमेघ

4.2.1 भूमिका

कालमेघ भारतीय उत्पत्ति का एक ऐसा महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है। जिसका उपयोग आदि काल से भारतीय चिकित्सा पद्धतियों में किया जाता रहा है। भारतवर्ष तथा श्रीलंका में बहुतायत में पाया जाने वाला यह पौधा चीन, थाईलैण्ड तथा बांग्लादेश में भी पाया जाता है। भारतवर्ष में यह जंगली अवस्था में मुख्यतया पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, बिहार, झारखंड, आंध्रप्रदेश, असम, केरल, कर्नाटक तथा उत्तर प्रदेश में पाया जाता है तथा अभी काफी बड़ी क्षेत्र में इसकी विधिवत खेती भी प्रारंभ हो चुकी है। यूं तो सम्पूर्ण भारतवर्ष में इसकी खेती की जा सकती है।

कालमेघ का पौधा परिपक्व अवस्था में

कालमेघ एक से तीन फीट ऊंचा एक वर्षीय पौधा होता है जिसे यदि अनुकूल वातावरण मिले तो यह एक से अधिक वर्ष तक भी चल सकता है। प्रारंभ (छोटी अवस्था) में इसका पौधा बिल्कुल मिर्ची के पौधे जैसा ही दिखता है जिस पर धान के जैसी फलियां लगती हैं। इसकी पत्तियां मिर्ची के पौधे की तरह गहरी हरी, भालाकार, लगभग 7.5 से.मी. लम्बी तथा 2.5 से.मी. चौड़ी होती हैं। इसका काण्ड काफी गहरे हरे रंग का होता है। इसके पौधों पर हल्के सफेद रंग के फूल निकलते हैं जिनसे अंततः फलियां तथा बीज बनते हैं। इसके बीज काफी छोटे

पीले–भूरे रंग के अश्वगंधा के बीजों जैसे होते हैं। कालमेघ का पौधा अत्यधिक कड़वा होता है तथा इसीलिए इसे ''किंग ऑफ बिटर्स'' भी कहा जाता है। औषधीय जगत में यद्यपि किन्हीं वैद्यों द्वारा इसकी पत्तियों को ज्यादा पसंद किया जाता है परन्तु व्यवसायिक जगत में अधिकांशतः इसका सम्पूर्ण पौधा ही बिक्रित होता है।

4.2.2 उद्देश्य : कालमेघ की खेती से सम्बन्धित सम्पूर्ण वैज्ञानिक जानकारियां उपलब्ध कराना।

4.2.3 कालमेघ का रासायनिक संगठन

कालमेघ की औषधीय महत्ता इसमें पाए जाने वाले विशेष घटक एन्ड्रोग्रेफोलाइड (Andrographolide) की वजह से है जोकि इसके पत्तों में 2.5 प्रतिशत तथा शेष पौधे में 2 प्रतिशत तक पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इस पौधे में फ्लेबनायड्स सेस्क्यूटर्पीन्स, तथा फिनाइलप्रोपेटायड्स भी पाए जाते हैं। इसकी जड़ें फ्लेबनायड्स; पैनीकोटीन; एटलीजिनेन–4;7 डाइमेथाइल ईथर; मोनोमिथाइल विघटीन तथा हाईड्राक्सी– 7,8,2;3 ट्रायमेथाक्सी फ्लेबोन तथा बी–सिटोस्टरोल का भी महत्वपूर्ण स्त्रोत है। जापान में इससे कई फ्लेवनायड्स जिन्हें एन्ड्रोग्रेफायडीन ए.बी.सी.डी.ई.एफ का नाम दिया गया है, इसकी जड़ों से निकाले गए हैं। जड़ों में इनकी मात्रा 0.015 से 0.15 प्रतिशत तक पाई गई है। फ्लेवनायड्स के अतिरिक्त इस पौधे में केफिक एसिड, क्लोरोजैनिक एसिड तथा डिकाफियोल्योक्यूनिक एसिड भी पाए जाते हैं।

4.2.4 कालमेघ की औषधीय उपयोगिता

कालमेघ सम्पूर्ण भारतवर्ष में अनेकों बीमारियों के उपचार हेतु आदिकाल से काम में लाई जाने वाली वनौषधि हैं पश्चिमी बंगाल में इसको प्रत्येक गृह वाटिका में लगाया जाना शुभ माना जाता है तथा वहां पर इससे एक महत्वपूर्ण दवाई ''एलुई'' का निर्माण किया जाता है जिसे सामान्य कमजोरी तथा अपच की स्थिति में प्रयुक्त किया जाता है। बुखार से राहत के लिए यह अत्यधिक प्रभावी पाई गई है तथा केरल, कर्नाटक आदि राज्यों में इसे बुखार की स्थिति में घरेलू चिकित्सा के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। बुखार होने की स्थिति में इसके 30 ग्राम पत्तों को चार कप पानी में उबाल करके उसका

काढ़ा बना करके रोगी को देने से बुखार से तत्काल राहत मिलती है। पुराने मलेरिया ज्वर, पीलिया, पेट की बीमारियों (रक्त अल्पता, भूख न लगना) आदि जैसे रोगों के उपचार में इसे अत्यधिक प्रभावशाली पाया गया है। कई राज्यों में विशेष रूप से आदिवासी क्षेत्रों में जहां मलेरिया तथा पीलिया ज्वर का काफी प्रकोप होता है इसके पंचांग के पैकेट वितरित किए जाते हैं ताकि इन क्षेत्रों के लोग आवश्यकता पड़ने पर इसका काढ़ा बनाकर पी सकें तथा ज्वर मुक्त हो सकें। लीवर से संबंधित विकारों को दूर करने हेतु इसके कई टॉनिक भी बाजार में उपलब्ध हैं। इसी प्रकार हैपीटाइटिस के उपचार में भी इसकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। उपरोक्त के साथ–साथ इसका उपयोग उच्च रक्तचाप दस्त लगने, पेट के कीड़ों के उपचार तथा सांप के काटे के उपचार हेतु भी किया जाता है। इस प्रकार कालमेघ मानव मात्र के प्राथमिक रोगों के उपचार हेतु काम आने वाला एक अत्यधिक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है जिसे प्रत्येक घर तथा किचन गार्डन में लगाया जाना चाहिए। सूखे पंचांग के साथ–साथ यह टिंचर (Tincture Kalmegh) तथा एक्सट्रेक्ट के रूप में भी बाजार में मिलता है जिनका विभिन्न भारतीय चिकित्सा पद्धतियों में उपयोग किया जाता है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि कालमेघ औषधीय दृष्टि से अत्यधिक उपयोगी पौधा है जिसकी औषधीय जगत में व्यापक उपयोगिता को देखते हुए इसके निरन्तर मांग में बने रहने तथा भविष्य में मांग के बढ़ने की प्रचुर संभावनाएं हैं।

4.2.5 क्या कालमेघ तथा चिरायता एक ही हैं?

यूं तो कालमेघ (एंड्रोग्राफिक्स पैनीकुलाटा) तथा चिरायता (स्वर्टिया चिरायता) दोनों अलग–अलग वनस्पतिक कुलों तथा भिन्न विशेषताओं वाले पौधे हैं परन्तु कई व्यक्तियों द्वारा (कई व्यापारियों द्वारा भी) इसे एक ही समझा जाता है। यहां यह समझाना ज्यादा महत्वपूर्ण है कि हालांकि दोनों का स्वाद तो कड़वा है परन्तु मूलभूत गुण दोनों में अलग–अलग हैं। जहां कालमेघ मध्यभारत के मैदानी इलाकों में पाया जाता है वहीं चिरायता हिमालयी क्षेत्रों जैसे हिमाचल प्रदेश तथा उत्तरांचल आदि के साथ–साथ नेपाल में पाया जाता है। इसलिए इसके **नेपाली चिरायता** भी कहा जाता है। इसी प्रकार जहां कालमेघ का मुख्य रासायनिक घटक ''एन्ड्रोग्रेफोलाइड''

है वहीं चिरायता के मुख्य घटक चिरेटिन तथा ओफेलिक एसिड होते हैं। कालमेघ एवं चिरायता के भावों में भी भारी अंतर है। जहां कालमेघ के पंचांग की दर 10–15 रु. प्रति कि.ग्रा. है वहीं चिरायता के पंचांग का का बाजार भाव 150 से 250 रू. प्रति कि.ग्रा. है। इस प्रकार कालमेघ को कडु चिरायता तो कहा जा सकता है। परन्तु यह असली चिरायता अथवा स्वर्टिया चिरायता से पूर्णतया भिन्न है।

4.2.6 कालमेघ की खेती की विधि

अभी तक कालमेघ अधिकांशतः प्राकृतिक स्त्रोतों (जंगलों) से ही प्राप्त होता था विशेषतया झारखंड, बिहार, मध्यप्रदेश आदि राज्यों में इसकी प्राकृतिक उपलब्धता काफी अधिक है। परन्तु इसकी बढ़ती जा रही मांग तथा गुणवत्तापूर्ण मेटेरियल प्राप्त करने की दृष्टि से इसकी विधिवत खेती देश के कई भागों में काफी बड़े पैमाने पर प्रारंभ हो चुकी है, जो काफी सफल रही है। वर्तमान में इसकी प्रचलित कृषि तकनीक के प्रमुख पहलू निम्नानुसार हैं–

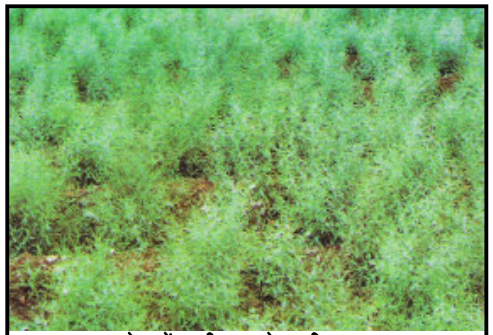

खेत में लगी कालमेघ की फसल

4.2.7 उपयुक्त जलवायु

प्राकृतिक रूप से यूं तो कालमेघ नमीदार अथवा छांव वाले क्षेत्रों में तथा कभी–कभी शुष्क वनों में अच्छी प्रकार उगती हुई पाई जाती है परन्तु एक फसल के रूप में इसकी अच्छी बढ़त के लिए उष्ण कटिबन्धीय जलवायु ज्यादा उपयुक्त पाई जाती है। इस प्रकार ज्यादा ठंडे क्षेत्रों को छोड़कर सम्पूर्ण भारतवर्ष की जलवायु इसकी खेती के लिए उपयुक्त है।

4.2.8 उपयुक्त मिट्टी

कालमेघ काफी अधिक कठोर प्रवृत्ति का पौधा है तथा लगभग सभी प्रकार की सामान्य मिट्यिों में इसे सफलतपूर्वक उगाया जा सकता है।

विशेष रूप से हल्की कपासिया मिट्यिां तथा रेतीली दोमट मिट्यिां जिनमें जीवाश्म (आर्गेनिक मैटर) की पर्याप्त उपलब्धता हो, में इसकी अपेक्षाकृत अच्छी बढ़त देखी गई है। प्रायः जिन मिट्यिों में मिर्ची तथा कपास का अच्छा उत्पादन होता है, वहां कालमेघ की भी अच्छी बढ़त देखी गयी है। कालमेघ की अच्छी बढ़त की दृष्टि से संबंधित खेत में जल भराव की समस्या नहीं होनी चाहिए तथा मिट्टी का पी.एच. सामान्य (6.5 से 8.5 तक होना चाहिए।

4.2.9 कालमेघ का प्रवर्धन

कालमेघ का प्रवर्धन बीजों से भी किया जा सकता है तथा कटिंग से भी। व्यवसायिक कृषिकरण हेतु इसका बीजों से प्रवर्धन करना ज्यादा उपयुक्त तथा आसान होता है जिसके लिए पहले इसकी पौधशाला भी बनाई जा सकती है तथा इसको सीधे खेत में भी लगाया जा सकता है। इन दोनों विधियों के गुण–दोष निम्नानुसार हैं–

(क) सीधे खेत में लगाना

कई बार किन्हीं किसानों द्वारा छिटकवां विधि द्वारा सीधे खेत में भी कालमेघ के बीज डाल दिए जाते हैं। इस विधि से बिजाई करने पर बीज का उगाव तो अच्छा हो जाता है परन्तु खेत में खरपतवार अत्यधिक आ जाता है। क्योंकि अपने प्रारंभिक दिनों में कालमेघ के पौधे काफी धीमी गति से बढ़ते हैं अतः खेत की खरपतवार इन पर हावी हो जाती है जिससे एक तो खरपतवार निकालने पर काफी खर्च हो जाता है दूसरे इससे पौधों की वृद्धि काफी अधिक प्रभावित होती है अतः व्यवसायिक कृषि कार्य की दृष्टि से सीधे खेत में लगाने की बजाए नर्सरी बनाकर करके कालमेघ की बिजाई करना ज्यादा उपयुक्त होता है।

(ख) नर्सरी अथवा पौधशाला बनाना

कालमेघ के पौधों की सर्वप्रथम नर्सरी बनाकर उनका खेत में रोपण करना न केवल अपेक्षाकृत कम खर्चीली विधि है बल्कि यह ज्यादा सफल भी है। इस विधि से सर्वप्रथम मई माह के प्रथम सप्ताह में एक नर्सरी बनाई जाती है। प्रायः एक एकड़ की बिजाई के लिए 100 वर्गफीट की नर्सरी पर्याप्त होती है। यथासंभव यह नर्सरी चौड़ाई में कम तथा लम्बाई में अधिक होनी चाहिए

ताकि इसके दोनों किनारों पर बैठ करके (बिना पौधशाला के अंदर कदम रखे) नर्सरी में उगे खरपतवार की सफाई की जा सके। यह नर्सरी सामान्य भूमि से लगभग 6 से 9 इंच ऊपर उठी हुई होनी चाहिए। नर्सरी तैयार करने के लिए इस क्षेत्र की साफ सफाई करके इसमें लगभग 50 कि.ग्रा. अच्छी पकी हुई खाद डाल करके इसे अच्छी प्रकार तैयार किया जाता है। खाद डाल देने के उपरान्त नर्सरी में हल्की सिंचाई कर दी जाती है तथा तदुपरान्त कालमेघ के लगभग 400 ग्राम बीज पांच गुना सूखी बालू में मिला करके इसे नर्सरी में छिड़क दिए जाते हैं। बीज छिड़क देने के उपरान्त उन पर मिट्टी अथवा केचुआं खाद अथवा छनी हुई खाद की एक पतली परत चढ़ाई जाती है ताकि ये बीज इस खाद–मिट्टी से पूरी तरह ढंक जाऐं। क्योंकि उस समय (मई माह में) काफी गर्मी तथा धूप होती है अतः प्रारंभिक दिनों के लिए इस नर्सरी स्थल को सूखे डंठलों अथवा पुआल आदि से ढंक दिया जाता है। कई बार इस नर्सरी के ऊपर एक शेड भी बना दिया जाता है ताकि छोटे पौधों (सीडलिंग्स) को सीधी धूप न लगे। इस नर्सरी की 3–4 दिन में एक बार फव्वारे अथवा स्प्रिंकलर्स से हल्की सिंचाई की जाती है। यूं तो कालमेघ के 32 माह तक पुराने बीजों का भी उगाव हो सकता है परन्तु अच्छे उगाव (80 प्रतिशत से अधिक) के लिए आवश्यक हैं कि बीज 8 माह से ज्यादा पुराने न हों।

प्रायः 7–8 दिन में पौधों का उगाव प्रारंभ हो जाता है। इसी बीच आवश्यकतानुसार खरपतवार भी निकाला जाता है तथा सिंचाई आदि भी की जाती है। यूं तो नर्सरी में रोपण के 35–40 दिन के उपरान्त ही पौधे खेत में ट्रांसप्लांट करने योग्य हो जाते हैं परन्तु विभिन्न शोधकर्ताओं द्वारा यह देखा गया है कि इनकी ट्रांसप्लांटिंग का सर्वाधिक उपयुक्त समय तब होता है जब पौधे 50

कालमेघ का सूखा हुआ पंचांग

दिन (लगभग 8–9 से.मी. के) हो जाएं। इस प्रकार जून माह के अंत अथवा जुलाई माह के प्रारंभ में पौधों को नर्सरी से उखाड़ करके खेत में ट्रांसप्लांट कर दिया जाता है।

4.2.10 खेत की तैयारी

नर्सरी बनाने क साथ–साथ ही खेत की तैयारी भी करना होती है। इसके लिए सर्वप्रथम खेत की गहरी जुताई करके उसे खरपतवार आदि से मुक्त किया जाता है। तदुपरान्त उस खेत में 5 टन प्रति एकड़ की दर से गोबर की अच्छी पकी हुई खाद अथवा कम्पोस्ट खाद मिला दी जाती है। इस खाद को खेत में अच्छी प्रकार मिला देने के उपरान्त पुनः एक बार खेत की जुताई करके पाटा चला दिया जाता है।

4.2.11 पौध की खेत में ट्रांसप्लांटिंग

खेत के अच्छी प्रकार तैयार हो जाने के उपरान्त नर्सरी में तैयार हुई पौध की खेत में ट्रांसप्लांटिंग कर दी जाती है। ट्रांसप्लांटिंग के पूर्व पौधों को बायोजाइम सीडप्लस से उपचारित कर लेने से पौधे जल्दी जड़ें पकड़ते हैं तथा पौधों में कीटों तथा बीमारियों से लड़ने की क्षमता का भी विकास होता है। इस कार्य हेतु बायोजाइम सीडप्लस की एक से दो मि.ली. मात्रा को 100 मि.ली पानी में मिलाकर जड़ों को 10 से 15 मिनट तक उपचारित करना लाभकारी रहता है ट्रांसप्लांटिंग करते समय यदि प्राकृतिक रूप से रिमझिम बरसात हो रही हो तो यह अति उत्तम रहता है परन्तु यदि ऐसा न हो रहा हो तब भी ट्रांसप्लांटिंग से पूर्व खेत में एक बार खुला पानी छोड़ा जा सकता है। तदुपरान्त हाथ से अथवा खुरपी की सहायता से खेत में छोटे–छोटे गड्ढे बनाकर पौध को खेत में ट्रांसप्लांट कर दिया जाता है। यदि बारिश न हो रही हो तो ट्रांसप्लांट के उपरान्त खेत की एक हल्की सिंचाई कर दी जाती हैं कालमेघ की रोपाई उसी प्रकार की जाती है जैसे मिर्ची, टमाटर अथवा बैंगन की रोपाई। पौधों की रोपाई 1–1 फीट पर की जाती है। कालमेघ की खेती के संबंध में ट्रांसप्लांटिंग के समय का अत्यधिक महत्व है। सही बढ़त के लिए ट्रांसप्लांटिंग प्रायः 15 जुलाई से पूर्व हो जानी चाहिए। यदि ट्रांसप्लांटिंग में अधिक देर होगी तो पौधों की वृद्धि प्रभावित होगी। यह देखा गया है कि मध्यभारत के संदर्भ में 15 अगस्त के उपरान्त ट्रांसप्लांट किए गए

पौधों की बढ़त काफी कम रहती है।

4.2.12 निंराई–गुड़ाई तथा खरपतवार नियन्त्रण

मानसून की फसल होने के कारण कालमेघ के खेत में खरपतवार होना स्वाभाविक है जिनसे यदि समय रहते फसल को मुक्त नहीं रखा गया तो फसल की वृद्धि प्रभावित होगी। इसके लिए हालांकि प्री इमरजेन्स वाले खरपतवार नाशकों का उपयोग भी किया जा सकता है परन्तु यह ज्यादा उपयुक्त रहेगा यदि निंराई–गुड़ाई हाथ से ही की जाए। इस संदर्भ में पहली निंराई फसल के रोपण के लगभग 20–25 दिन के उपरान्त करनी चाहिए तथा तदुपरान्त दूसरी निंराई अगले 40 दिनों के बाद। इस प्रकार दो निराइयां हाथ से कर देने से फसल अधिकांशतः खरपतवारों से मुक्त रहती है तथा अच्छी बढ़त लेती है।

4.2.13 सिंचाई की व्यवस्था

मानसून की फसल होने की वजह से यूं तो कालमेघ को अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती परन्तु यदि बारिश समय पर न हो रही हो तो 20–20 दिन के अंतराल में (मिट्टी की मांग के अनुसार) सिंचाई कर दी जानी चाहिए।

4.2.14 खाद तथा कीटनाशकों की आवश्यकता

यदि खेत तैयार करते समय पर्याप्त मात्रा में कम्पोस्ट खाद (5 टन प्रति एकड़) डाली गई हो तो अतिरिक्त खाद की आवश्यकता नहीं रहती। फिर भी यदि फसल की वृद्धि संतोषजनक न हो तो प्रति एकड़ 15 कि.ग्रा. बायोनीमा जैविक खाद एक बार ट्रांसप्लांटिंग के 20 दिन बाद तथा दूसरी बार 40 दिन के उपरान्त पौधों के पास–पास डालने से फसल की अच्छी वृद्धि होती है। कालमेघ की फसल प्रायः रोगों तथा कीटाणुओं से मुक्त रहती है अतः फसल सुरक्षा हेतु किन्हीं विशेष कीटनाशकों की आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि कालमेघ के पौधे अत्यधिक कड़वे होते हैं अतः इनको बहुधा पशुओं आदि से नुकसान भी नहीं होता।

4.2.15 फसल की तैयारी अथवा फसल का पकना (Maturity of the Crop)

ट्रांसप्लांटिंग के लगभग ढाई माह बाद कालमेघ के पौधों पर हल्के

सफेद रंग के फूल आने लगते हैं जिन पर धान के जैसी फलियां आती हैं। धीरे–धीरे ये फलियां पकने लगती हैं। यही इसे उखाड़ने का उपयुक्त समय होता है। कालमेघ के संदर्भ में एक विशेष बात ध्यान देने वाली यह है कि प्रारंभ में तो पौधे पर काफी ज्यादा पत्ते (बायोमास) होते हैं परन्तु जैसे ही फूल लगने लगें तथा कलियां बनने लगें वैसे ही ऊपर के पत्ते झड़ने लगते हैं तथा ऊपर का भाग पत्ते रहित डंठलों में परिवर्तित हो जाता है जबकि नीचे पत्ते (बायोमास) रहते हैं यही इसे उखाड़ने का सही समय होता है। प्रायः यह स्थिति अक्टूबर–नवम्बर माह में आती है। इस स्थिति में पूरे पौधे को उखाड़ करके सुखा लिया जाता है। इस स्थिति में उखाड़ने पर पौधे का पूरा पंचांग प्राप्त हो जाता है।

यदि किसान पौधों से बीज भी प्राप्त करना चाहें तो इसे अक्टूबर माह में उखाड़ने की बजाए एक–दो महीने और खेत में लगा रहने दिया जाता है तथा जनवरी–फरवरी माह में जब काफी मात्रा में फलियां पक जऐं तो सम्पूर्ण पौधे को उखाड़ लिया जाता है। इस स्थिति में उखाड़ने पर पत्ते तो अपेक्षाकृत कम हो जाते हैं परन्तु बीज की अतिरिक्त प्राप्ति किसान को हो जाती है। एक बात ध्यान देने वाली यह भी है कि यदि पत्तों की मात्रा कम भी रहे तब भी फसल के काफी अच्छे दाम मिल जाते हैं (हालांकि यदि पत्ते साथ में होते तो दाम और भी ज्यादा मिल सकते थे क्योंकि पत्तों में एन्ड्रोग्रेफोलाइड तत्व डंठलों की अपेक्षा अधिक होता है) इस प्रकार फसल की हारवेस्टिंग फलियां आने पर (अक्टूबर–नवम्बर माह) में भी की जा सकती हैं तथा फलियां पकने (फरवरी–मार्च माह) पर भी। वर्तमान में मध्यभारत के विभिन्न क्षेत्रों जेसे मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, आंध्रप्रदेश आदि राज्यों के किसानों के अनुभवों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अक्टूबर–नवम्बर माह में हारवेस्टिंग करने पर प्रति एकड़

खलिहान में सुखती कालमेघ की फसल

औसतन 10 क्विंटल सूखा पंचांग प्राप्त हो जाता है जबकि फरवरी–मार्च माह में हारवेस्टिंग करने पर प्रति एकड़ औसतन 8.5 क्विंटल तथा लगभग 20 कि.ग्रा. बीज किसान को प्राप्त हो जाता है। यदि सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था हो तो कालमेघ की एक से अधिक कटाइयां भी ली जा सकती हैं। ऐसी स्थिति में जब पौधों पर फूल आने लगें (अक्टूबर माह में) तो पौधों को नीचे से (जमीन से 4–5 इंच ऊपर से) काट लिया जाता है तथा काटी हुई शाक को सुखा लिया जाता है। फसल काट लेने के उपरान्त खेत की सिंचाई कर दी जाती हैं जिससे फसल पुनः प्रस्फुटित होने लगती है। पुनः जब यह फसल 60–70 दिन की हो जाती हैं तथा इस पर फूल एवं फलियां आनी प्रारंभ हो जाती हैं तो ऐसी अवस्था में पूरे पौधे को उखाड़ लिया जाता है। तदुपरान्त इन उखाड़े हुए पौधों को सुखा लिया जाता है। ऐसे में दो फसलें (कटाइयाँ) किसान को प्राप्त हो जाती हैं तथा इन दो कटाइयों से औसतन 15 क्विंटल तक सूखी शाक प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार कालमेघ की फसल अक्टूबर–नवम्बर में भी निकाली जा सकती हैं तथा फरवरी–मार्च में भी। इसकी एक कटाई भी ली जा सकती है तथा दो कटाइयां भी।

4.2.16 कालमेघ की बिक्री व्यवस्था

कालमेघ के व्यापारी मुख्यतया कानपुर, इन्दौर, खारीबावली नई दिल्ली, कटनी (म.प्र.) आदि स्थानों पर कार्यरत हैं जिनके द्वारा इसकी थोक खरीददारी की जाती है।

4.2.17 बीज प्राप्ति तथा पुर्नखरीदी की सुविधा

कालमेघ के बीजों की प्राप्ति तथा पुर्नखरीदी अनुबन्ध तथा इसकी बिक्री हेतु **मे. राज एण्ड कम्पनी, पारसी मन्दिर के पास (काटजू मार्केट के पीछे) नीमच (म.प्र.)** फोन क्र. (07423) 221600/225341 से भी संपर्क किया जा सकता है।

4.2.18 कालमेघ की खेती के संदर्भ में मुख्य समस्या

कालमेघ के संदर्भ में एक मुख्य समस्या इसके ट्रांसपोर्टेशन में आती है। क्योंकि इसकी सूखी शाक का फुलाव (वल्यूम) काफी अधिक हो जाता है अतः एक सामान्य ट्रक में 4–5 टन से अधिक माल नहीं भर पाता। इसके फलस्वरूप यदि फसल को उत्पादन स्थल से दूर भिजवाना हो तो परिवहन पर काफी अधिक व्यय आ जाता है। अतः कालमेघ उत्पादकों को अपनी फसल की बिक्री व्यवस्था हेतु यथासंभव स्थानीय अथवा नजदीकी बाजार ही ढूंढना चाहिए ताकि उन्हें परिवहन पर ज्यादा खर्चा न करना पड़े।

4.2.19 कालमेघ की फसल से उत्पादन तथा प्राप्तियाँ

कालमेघ की अच्छी फसल से औसतन 10 क्विंटल सूखी शाक (हर्ब) प्राप्त हो जाती है जिसकी बिक्री यूं तो 1500 रू. प्रति क्विंटल तक भी हो सकती है परन्तु यदि 1300 रु. प्रति क्विंटल तक भी इसकी बिक्री हो जाए तो इस छः माह की फसल से किसान को लगभग 13000 रु. प्रति एकड़ की प्राप्तियां होती हैं जिसमें से 7000/– रु. प्रति एकड़ का शुद्ध लाभ प्राप्त हा सकता है यदि बिक्री मूल्य अधिक (1300 रु. प्रति क्विंटल से अधिक) मिल सके, यदि किसान दो कटाइयां ले सकें, तथा यदि बीज की भी बिक्री हो सके तो फसल से होने वाले लाभ की मात्रा और भी बढ़ सकती है।

4.2.20 कालमेघ के साथ अंतवर्तीय फसलें

कालमेघ के साथ कई अंर्तवर्तीय फसलें भी ली जा सकती हैं तथा कई अन्य फसलों के साथ भी कालमेघ की फसल ली जा सकती है। उदाहरणार्थ सफेद मूसली की फसल के बीचों–बीच कालमेघ की फसल कई किसानों द्वारा सफलतापूर्वक ली गई है। इसी प्रकार आंवले के पौधों के बीच भी इसकी फसल ली जा सकती है। क्योंकि इसके पौधे ज्यादा ऊँचे नहीं जाते तथा इनका ज्यादा फैलाव भी नहीं होता अतः कई अन्य फसलों के बीच में तथा/अथवा उनके साथ में कालमेघ की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। इस प्रकार न केवल औषधीय, बल्कि व्यवसायिक दृष्टि से भी कालमेघ काफी अधिक उपयोगी औषधीय पौधा है। इसकी खेती पर होने वाले अपेक्षाकृत कम प्रारंभिक खर्चों, इसकी आसान कृषि क्रियाओं, इसकी रोगों एवं कीटाणुओं के प्रकोप से मुक्ति, दूसरी कई फसलों के साथ ली जा सकने वाली इसकी खेती तथा इसकी खेती से होने वाले काफी अच्छे आर्थिक लाभ के कारण भारतवर्ष के मैदानी इलाकों में इसकी खेती काफी सफलतापूर्वक अपनाई जा सकती है।

4.2.21 कालमेघ की खेती में होने वाले आय–व्यय का विवरण

(क) व्यय की मदें		
1. खेत की तैयारी पर व्यय (दो जुताईयाँ)	=	500/–
2. खाद की लागत (5 टन गोबर/ कम्पोस्ट खाद)	=	1000/–
3. बीज की लागत (1500 रु. प्रति कि.ग्रा. की दर से 500 ग्रा. हेतु	=	750/–
4. नर्सरी बनाने की लागत	=	500/–
5. खेत में पौध की ट्रांसप्लांटिंग पर व्यय	=	250/–
6. जैविक टॉनिकों की लागत	=	500/–
7. सिंचाई, निंदाई–गुणाई की लागत	=	500/–
8. फसल की उखड़ाई, सुखाने आदि पर व्यय	=	500/–
9. अन्य विविध खर्च तथा ट्रांसपोर्टेशन पर व्यय	=	1500/–
कुल योग	**=**	**6000/–**

(ख) प्राप्तियाँ

पंचांग की बिक्री से प्राप्तियां (10 क्विंटल पंचांग 13 रु. प्रति क्विंटल की दर से)	=	13000/–
शुद्ध लाभ= 13000 –6000	**=**	**7000/–**

❖❖❖

इकाई– 4

लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. ग्वारपाठा का उत्पत्ति स्थल कहाँ माना जाता है?
2. औषधीय दृष्टि से ग्वारपाठा का कौन सा भाग उपयोग किया जाता है?
3. ग्वारपाठा का सर्वाधिक उपयुक्त समय कौन सा है?
4. कालमेघ का उत्पत्ति स्थल किसे माना जाता है?
5. कालमेघ की बुवाई का उपयुक्त समय कौन सा है?

खाली स्थान भरो :

1. ग्वारपाठा से निकाले जाने वाले पदार्थ एलुआ में..... नामक ग्लूकोसाइड का समूह पाया जाता है।
2. ग्वारपाठा के पौधे के लिए.....तथा.....जलवायु उपयुक्त होती है।
3. कालमेघ को .....भी कहा जाता है।
4. कालमेघ में पाया जाने वाला विशेष घटक..... ...है।
5. कालमेघ की अच्छी फसल से एक एकड़ में लगभग..... .....सूखी शाक पैदा होती है।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न :

1. ग्वारपाठा के औषधीय उपयोग तथा इसकी कृषि तकनीकी का विस्तार से वर्णन करें।
2. कालमेघ तथा चिरायता में क्या अन्तर है? कालमेघ का औषधीय उपयोग बताइये।
3. कालमेघ की कृषि तकनीकी तथा इसकी आर्थिकी का वर्णन करें।

❖❖